‘गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना’ वर्ष

पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल प्रेक्षागृह, लखनऊ (उत्तरप्रदेश) में कुलाधिपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा आई. ई. टी. के विद्यार्थियों को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद विषय पर उद्बोधन

सिलचर (असम) में सम्पूर्ण भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ 108 कुण्डी गायत्री महायज्ञ

संस्थापक- संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं. श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ. प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी,मथुरा
दूरभाष नं. (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल न. 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं. (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरको पर
एस. एम. एस. न करें।
ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 84 । अंक : 05
मई : 2020 | श्रावण- भाद्रपद : 2076
प्रकाशन तिथि : 01.05.2020
वार्षिक चंदा
भारत में : 220/- ₹
विदेश में : 1600/- ₹
आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में : 5000/- ₹

उपासना

प्रत्येक कार्य का कोई न कोई कर्त्ता अवश्य होता है। किए गए कार्य के ऊपर परिणाम देने के लिए उसका अपना एक अधिष्ठाता भी होता है। परिवारों की व्यवस्था घर के मुखिया के हाथ में तो राष्ट्रों की व्यवस्था राष्ट्राध्यक्षों के हाथो में होती है। जिसके पास जैसी शक्तियाँ होती हैं- उसी के अनुरूप अधिकार व दायित्व भी उनको प्रदान किये जाते हैं। यदि वो उनको प्रदत्त न किए जाऐं तो सर्वत्र स्वेच्छाचारिता, अन्याय का वातावरण व्याप्त हो जाए।

ऐसी ही निर्धारित व्यवस्था प्रकृति ने भी सब ओर अपनाई हुई है। सूर्य-चंद्र नियत समय पर निकलते हैं, नियत समय पर अस्त होते हैं। ऋतुओं के मौसमों के समय निर्धारित हैं। ग्रहों की भी कक्षाऐं बँधी हुई हैं। इनमें से किसी को भी अमर्यादा का अधिकार प्राप्त नहीं है। परमात्मा ने यह व्यवस्था इतनी शानदार बनायी है कि यदि सभी मनुष्य इसका विधिपूर्वक पालन करते चलें तो कोई भी दु:खी, अभावग्रस्त या त्रस्त न रहे।

ईश्वर की उपासना इसी विधि-व्यवस्था के प्रति समग्र समर्पण का प्रतीक है। नदियाँ जब तक सागर से न मिल लें तब तक वे अस्थिर और बेचैन ही रहती हैं। मनुष्य भी जब तक अपने रचयिता परमेश्वर से एकाकार न हो जाए, तब तक उसकी उद्विग्नता बनी ही रहती है। अपनी तुच्छ सत्ता को परमात्मा के प्रति समर्पित कर देने से मनुष्य कष्ट-कठिनाईयों से भी बचता है और संसार के आनंद का भी उपभोग कर पाता है। सर्वशक्तिमान सत्ता को भाव भरा समर्पण ही उपासना का मूल आधार है।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विषय सूची

- उपासना ...3
- विशिष्ट सामयिक चिन्तन
- नदियों के गिरते जलस्तर का त्वरित हो समाधान ...5
- अप्प दीपो भव ...8
- निर्मल मन जन सो मोहि पावा ...10
- पर्व विशेष
  आत्म चेतना के आरोहण का पर्व ...12
- हर कर्म पूजा बना लें ...14
- व्यावहारिक बुद्धिमत्ता के अद्भुत प्रयोग ...17
- आत्मिक संतोष का पर्याय है त्याग ...19
- सफलता के सोपानों पर चढ़ने के सूत्र ...21
- ममता का सागर है माँ ...23
- ईश्वरप्राप्ति का सबसे सुगम मार्ग है भक्ति ...25
- जल संचयन की अनिवार्य आवश्यकता ...27
- परहित सरिस धरम नहिं भाई ...29
- स्वयं को चुनौती देकर चुनौतियों का सामना करें ...31
- औरों के लिए भी जीना सीखें ...33
- पीड़ितों की सेवा से बड़ा धर्मोपदेश कुछ भी नहीं ...35
- जहाँ से भी मिले, लें सत्संग का सहारा ...37
- चेतना की शिखर यात्रा-212
  अवतार प्रक्रिया का रहस्य ...39
- हम क्यों देखते हैं सपने? ...42
- ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार-133
  परामर्श का प्रभाव ...44
- उद्देश्य के साथ करें तीर्थयात्रा ...46
- भरोसे पर निर्भर है दोस्ती ...48
- युग गीता-240
  क्षर-अक्षर से परे परमात्मा हैं पुरुषोत्तम ...50
- युग निर्माण में शिक्षकों की भूमिका ...52
- युवा प्रतिभाओं का देश ...54
- परम पूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी-2
  आध्यात्मिकता के मूल सिद्धान्त ...56
- विश्वविद्यालय परिसर से-179
  समग्र शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च सम्मान का अधिकारी बना विश्वविद्यालय ...61
- अपनों से अपनी बात
  मनुष्य जीवन की गौरव गरिमा न भूलें ...64
- कविता (संस्कृति रक्षा)-शोभाराम शशांक ...66

आवरण पृष्ठ परिचय- **बोधिवृक्ष के नीचे विराजमान बुद्ध**

मई 2020 व जून 2020 के पर्व-त्यौहार

सोमवार	04 मई	मोहिनी एकादशी	सोमवार	01 जून	गायत्री जयंती/ परमपूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस
बुधवार	06 मई	नृसिंह जयंती	मंगलवार	02 जून	निर्जला एकादशी
गुरुवार	07 मई	बुद्ध पूर्णिमा	शुक्रवार	05 जून	कबीर जयंती
सोमवार	18 मई	अपरा एकादशी	बुधवार	17 जून	योगिनी एकादशी
शुक्रवार	22 मई	वट सावित्री व्रत	रविवार	21 जून	विश्व योग दिवस/ सूर्यग्रहण
सोमवार	25 मई	महाराणा प्रताप जयंती	मंगलवार	23 जून	श्री जगन्नाथ रथयात्रा

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। - सपादक

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

नदियों के गिरते जलस्तर का त्वरित हो समाधान

भारत एक कृषिप्रधान देश है। कृषि का इतिहास भारत में सिंधु घाटी सभ्यता से भी प्राचीन माना जाता रहा है एवं वर्तमान परिस्थितियों में भी जबकि पूरे विश्व में कृषियोग्य भूमि घटती नजर आ रही है, ऐसे में भी कृषियोग्य भूमि की दृष्टि से भारत विश्व में द्वितीय स्थान पर है। यदि सन् २०१८ के आँकड़ों पर दृष्टि डालें तो कृषि कार्यों में भारत की लगभग ५० प्रतिशत श्रमिक क्षमता निरत दिखाई पड़ती है जो कि भारत की विकास दर या जी.डी.पी में १७-१८ प्रतिशत का योगदान भी करती नजर आती है। यदि फसलों के उत्पादन की दृष्टि से या उसमें प्राप्त विविधता की दृष्टि से देखें तो भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है एवं संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा चीन का स्थान भारत के बाद ही आता है। सन् २०१६ में भारत द्वारा किए गये कृषि उत्पादों की लागत ३२ बिलियन डॉलर थी और भारत के कृषि उत्पाद लगभग १२० देशों तक जा रहे थे।

स्पष्ट है कि जिस देश के विकास में कृषि का स्थान इतना महत्त्वपूर्ण हो-उस देश में नदियों का स्थान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण हो जाता है। खेती की व्यवस्था बनाने से पहले किसानों को ये सोचना जरूरी हो जाता है कि वे खेतों तक पानी कैसे पहुँचाऐंगे। उस व्यवस्था को बनाए बगैर कृषि कर पाना संभव ही नहीं है। कृषि के लिए पानी की व्यवस्था अत्यंत जरूरी हो जाती है-फिर चाहे ये पानी उन तक नदियों द्वारा सीधे पहुँचे, जैसे कि कुछ पहाड़ों या डेल्टा क्षेत्रों में पहुँचता है, सिंचाई के लिए बनी नहरों के माध्यम से पहुँचे, भूगर्भीय जल से पहुँचे या वर्षा के जल से पहुँचे- पानी की समुचित व्यवस्था का बनना कृषि के लिए आवश्यक भी है और एक चुनौती भी।

नदियों के जल के अतिरिक्त फसलों की उपज- बारिश के समय, मात्रा एवं मानसून इत्यादि पर भी उतना ही निर्भर करती है। उदाहरण के तौर पर राजस्थान के किसानों को जितना वर्षा द्वारा जल प्राप्त हो पाता है, वो उत्तर भारत के किसानों को प्राप्त जल का दशांश भी नहीं होता। इसलिए इन क्षेत्रों में कृषि के लिए किसानों को नहरों, तालाबों, सरोवरों, जलाशयों एवं कुओं इत्यादि पर पूर्णतया निर्भर रहना पड़ता है।

इसे भारतभूमि को प्राप्त अनेकों सौभाग्यों में से एक यह कहा जा सकता है कि भारत में छोटी-बड़ी अनेकों नदियों की एक विस्तृत संरचना उपलब्ध है। यदि मात्र मुख्य नदियों को ही गिनें तो ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना, महानदी, गोदावरी, कृष्णा, नर्मदा, गोमती, शारदा, चंबल, बेतवा, गंडकी, ताप्ती, साबरमती, पूर्णा इत्यादि नदियाँ इसमें सम्मिलित हैं। यदि इनकी सहायक नदियों को गिनना प्रारंभ किया जाए तो ये संख्या ३०० तक पहुँच जाती है। हिमालय के ग्लेशियरों से लेकर पश्चिमी घाट तक ऐसे अनगिनत उद्गम क्षेत्र हैं, जिनसे निकलती नदियाँ संपूर्ण भारत वर्ष को अपनी उपस्थिति एवं उपलब्धता से आप्लावित करती हैं। इन नदियों के आकार एवं स्वरूप मौसमों के अनुसार बदल अवश्य जाते हैं और कभी ये शांत तो कभी उग्र-उफनती नजर आती हैं परंतु इनकी उपस्थिति मात्र ही भारत जैसे कृषिप्रधान देश के लिए एक दिव्य अनुदान कही जा सकती है।

मानसून के समय में कभी-कभी ये नदियाँ विनाशकारी व विप्लवकारी परिस्थितियों का निर्माण अवश्य कर देती हैं परंतु ऐसी चुनौतियों से निबटने के लिए ही बाँध बनाने का मार्ग खोजा गया। बाँधों का निर्माण न केवल अनेकों कृषकों की कृषि संबंधी जरूरतों को पूरा करता है बल्कि नदियों की ऐसी अनर्थकारी प्रकृति को नियोजित एवं संतुलित भी करता है। स्वाधीन भारत में इनके निर्माण पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। इसीलिए जहाँ सन् १९४७ में संपूर्ण भारत में छोटे-बड़े मिलाकर कुल ३०० ही बाँध थे तो वहीं आज इनकी संख्या ३२०० के करीब बताई जाती है।

इनमें से भाखड़ा नंगल, हीराकुंड, सरदार सरोवर, टिहरी, चेरूथनी, इंदिरा सागर, भेत्युर, कोयना, रिहन्द इत्यादि तो विश्वभर की सूची में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनमें से ज्यादातर का निर्माण सन् १९७१ से

सन् १९८९ के मध्य हुआ और ज्यादातर के निर्माण का उद्देश्य बाढ़ से आने वाली आपदा का नियंत्रण करने के साथ-साथ खेती के लिए पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करना, पानी से बिजली का निर्माण करना और सिंचाई योग्य भूमि में वृद्धि करना था।

सन् १९५५ में जब तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने बाँधों के निर्माण में तेजी लाने पर जोर देने की बात कही तब उन्होंने बाँधों को 'आधुनिक भारत का मंदिर' कहा था और यही कारण था कि सन् १९९० के आते-आते, इस क्षेत्र में भारत एक वैश्विक शक्ति बन चुका था। धीरे-धीरे मात्र इस सोच में अंतर आया कि बड़े और विशाल बाँधों के स्थान पर छोटी एवं मध्यम क्षेणी की परियोजनाओं को प्राथमिकता दी जाने लगी जो निश्चित रूप से एक सामयिक व सही सोच का परिणाम था। ये सही है कि विशाल बाँधों के द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में भारी उत्पादकता को जन्म दिया जा सकता है परंतु साथ ही ये भी सच है कि इनके निर्माण के लिए समाज को भारी कीमत चुकानी पड़ती है।

उदाहरण के लिए यदि टिहरी बाँध को लें तो इसके निर्माण के कारण अनेकों को विस्थापित होना पड़ा और पारिस्थितिकी तंत्र पर इसका जो प्रभाव पड़ा वो सर्वविदित है। टिहरी बाँध के निर्माण के लिए लगभग १००००० लोगों को अपनी पैतृक संपदा व जमीन छोड़नी पड़ी, जिसके भावनात्मक प्रभावों को माप पाना कभी संभव नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त टिहरी बाँध भूकंप संवेदनशील क्षेत्र में आता है। अक्टूबर १९९१ में आये भूकंप का केंद्रस्थान, बाँध के निर्माण स्थल से मात्र ५३ किमी दूर था। यदि उतने ही बड़े परिमाण का भूकंप फिर से इस क्षेत्र में आ जाए तो ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि करीब ५००००० लोगों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ेगा। वैज्ञानिक आँकड़ों के अनुसार एक बाँध करीब ३११४० लोगों के विस्थापन एवं ८७४८ हेक्टेयर भूमि के डूबने का कारण बनता है। स्पष्ट है कि बड़े बाँधों के लाभ तो हैं परन्तु चिंताजनक दुष्परिणाम भी आँखों के समक्ष हैं।

धीरे-धीरे नदियों के प्रवाह को बाँधने के दुष्परिणाम उभरकर के सामने आ रहे हैं। भारत की प्रमुख नदियों में से ज्यादातर में से जलयी जंतुओं की संख्या बुरी तरह से गिरी है। टिहरी बाँध बनने के कारण ही भागीरथी का जलस्तर १००० क्यूसिक फीट से घटकर २०० क्यूसिक फीट हो गया है। गंगा में मिलने वाली दुर्लभ डॉल्फिनें, मगरमच्छ इत्यादि अब दिखाई भी नहीं देते। ऐसी ही स्थिति चंबल जैसी नदियों की भी हुई है, जहाँ किसी समय भारी मात्रा में मगरमच्छ, कछुए इत्यादि पाए जाते थे तो अब वहाँ इनकी आबादी मात्र एक छोटे से हिस्से में सिमट कर के रह गयी है। केंद्रीय जल आयोग ने सन् १९९२ में एक दिशा-निर्देश जारी करके ये स्पष्ट रूप से कहा था कि बाँधों की जद में आने वाली किसी भी नदी में उसके अपने प्राकृतिक प्रवाह के दौरान औसतन १० दिन का न्यूनतम प्रवाह तो होना ही चाहिए परंतु तब भी ऐसा होता बहुत कम दिखाई पड़ता है।

राजस्थान एवं मध्य प्रदेश में सिंचाई के लिए गाँधीसागर एवं कोटा बैराज से मिलने वाले पानी की औसत मात्रा में २० वर्षों के मध्य ४५ प्रतिशत की कमी आई तो वहीं औद्योगिक दोहन में ३०० प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई। जिन नदियों में कभी नावें चला करती थीं आज लोग उन्हें घुटने-घुटने पानी में पार करते नजर आते हैं। ऐसे में इन नदियों की जैव-विविधता व प्राकृतिक सुरम्यता कैसे सुरक्षित रह पायेगी?

इन्हीं परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी जी द्वारा एक उल्लेखनीय परियोजना को प्रारंभ किया गया था। भारतीय जल विकास संस्थान द्वारा विकसित इस परियोजना को 'इंटर रिवर लिंकिग प्रोजेक्ट' का नाम दिया गया था और १२३ बिलियन डॉलर की इस महत्त्वाकांक्षी योजना का उद्देश्य भारत की लगभग ३० से ज्यादा बड़ी नदियों को आपस में जोड़ कर उनके जलसंकट को कम करना था। इस परियोजना को मूलरूप से तीन भागों में विभक्त किया गया था। पहले का उद्देश्य हिमालय से निकलने वाली नदियों के मध्य अंतर्संबंध को विकसित करना था, दूसरे का उद्देश्य दक्षिण-पश्चिमी क्षेत्र की नदियों के मध्य की परियोजना को विकसित करना था तो तीसरे का उद्देश्य अंतर्राज्यीय नदियों को जोड़ने की परियोजना को विकसित करना था।

ऐसा नहीं है कि इस तरह की परियोजनाऐं अन्य देशों में नहीं हैं। जर्मनी ने अपने देश की तीनों प्रमुख नदियों राइन, डेन्यूब और मेन को जोड़कर तीनों के जलस्तर में इतनी वृद्धि कर ली है कि वहाँ जलस्तर १४०० फुट गहरा है एवं पानी के जहाज वहाँ नदियों में चलते हैं। अमेरिका में ऐसी ही योजनाऐं टेनेसी एवं ऑमबिगबी नदियों के मध्य तो वहीं चीन में जिंसा एवं दियाची के मध्य ऐसी ही योजनाऐं विकसित की गई हैं।

ये सत्य है कि इतनी बड़ी योजना के प्रभाव पर्यावरण एवं जैव-विविधता पर पड़ेंगे परंतु साथ ही आज की परिस्थितियों में जब नदियाँ अपना जल तेजी से खोती नजर आ रही हैं- कुछ गंभीर निर्णय त्वरित रूप से लेने की आवश्यकता भी है। भारत जैसा कृषिप्रधान देश, जहाँ नदियाँ जीवनदायिनी रही हैं वहाँ आज की एक प्रमुख प्राथमिकता एवं चुनौती उनके गिरते जल स्तर को पुनः स्थापित करना है। इस कार्य को करने के लिए समाज के सभी वर्गों एवं घटकों को साथ-साथ मिलकर कार्य करने की आवश्यकता है। आज यदि इस चुनौती को नजरअंदाज कर दिया गया तो इसके घातक दुष्परिणाम हमारे बाद की पीढ़ियों को भुगतने पड़ सकते हैं।

मैंने इतना किया पर इसका बदला मुझे क्या मिला?' ऐसे विचार करने की उतावली न कीजिए। बादलों को देखिए वे सारे संसार पर जल बरसाते फिरते हैं, किसने उनके अहसान का बदला चुका दिया? बड़े-बड़े भूमिखण्डों का सिंचन करके उनमें हरियाली उपजाने वाली नदियों के परिश्रम की कीमत कौन देता है? हम पृथ्वी की छाती पर जन्म भर लदे रहते हैं और उसे मल-मूत्र से गंदा करते हैं, किसने उसका मुआवजा अदा किया है? वृक्षों से फल, छाया, लकड़ी पाते हैं, पर उन्हें हम क्या कीमत देते हैं?

परोपकार स्वयं ही एक बदला है। त्याग करना अजनबी आदमी को एक घाटे का सौदा प्रतीत होता है, पर जिन्हें परोपकार करने का अनुभव है वे जानते हैं कि ईश्वरीय वरदान की तरह यह दिव्य गुण कितना शान्तिदायक है और हृदय को कितना बल प्रदान करता है। उपकारी मनुष्य जानता है कि मेरे कार्यों से कितना लाभ दूसरों को होता है, उससे कई गुना अधिक लाभ स्वयं मेरा होता है।

त्याग करना, किसी की कुछ सहायता करना उधार देने की वैधानिक पद्धति है, जो कुछ हम दूसरों को देते हैं वह हमारी रक्षित पूँजी की तरह परमात्मा के कोष में जमा हो जाता है। जो अपनी रोटी दूसरों को बाँटकर खाता है उसको किसी बात की कमी नहीं रहती। जो केवल खाना और जमा करना ही जानता है उस अभागे को क्या मालूम होगा कि त्याग में कितनी मिठास छिपी हुई है?

मर्यादाओं से आबद्ध रहकर नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करते रहना, उद्धत आचरणों से बचना, शील और सौजन्य को निबाहना- यह मनुष्यता का आवश्यक उत्तरदायित्व है। जिन्होंने अपने भीतर आत्मा को समझा है और उसकी गौरव गरिमा को ध्यान में रखा है, उसे संयम, सदाचार और कर्त्तव्यनिष्ठा से जुड़ा हुआ शालीन जीवन जीना ही पड़ेगा।

अप्प दीपो भव

जीवन के हर पहलू में, वो चाहे सांसारिक हो या आध्यात्मिक, मार्गदर्शन की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए शिक्षा से लेकर धर्म-अध्यात्म का वृहद तंत्र खड़ा है। शिक्षकों एवं गुरुजनों का मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद शिष्यों एवं साधकों के जीवन में गति लाते हैं, प्राण फूँकते हैं व अभीष्ट लक्ष्य की ओर गतिशील करते हैं, लेकिन इतने भर से सब कुछ नहीं हो जाता। मंजिल के अंतिम मुकाम तक व्यक्ति को अपने ही बलबूते पहुँचना होता है अर्थात् अपने पुरुषार्थ को करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं।

जीवन में एक दौर ऐसा आता है जब प्रत्यक्ष मार्गदर्शन उपलब्ध नहीं हो पाता और यदि यह रहता भी है तो अपनी पात्रता के अभाव में इसका सीधा लाभ व्यक्ति नहीं ले पाता। बाहरी अवलम्बन पर अतिशय एवं अनावश्यक निर्भरता व्यक्ति के स्वतंत्र विकास में बाधक भी बनती है। इससे बाहर निकलकर अंततः साधक - शिष्य एवं मुमुक्षु को अकेले ही आगे बढ़ना होता है। जैसे पर्वतारोहण हो या कोई खेल या अन्य कला एवं विधा, शिक्षक की भूमिका प्राथमिक प्रशिक्षण देने के एक स्तर के बाद समाप्त हो जाती है। आगे शिष्य को अपने पैरों पर खड़े होकर अपनी मंजिल तक दूरी स्वयं ही तय करनी होती है।

अध्यात्म पथ पर तो ये नियम विशेष रूप से लागू होता है, जहाँ नित चेतना के नये रहस्य उद्घाटित हो रहे होते हैं, साधक रोज नई चुनौतियों का सामना कर रहा होता है। बाहर मार्गदर्शन की बैसाखी का अभ्यस्त मन ऐसे में अधिक दूर नहीं जा सकता। हर बात के लिए मार्गदर्शन का मुँह ताकते रहने के कारण स्वतंत्र चिंतन एवं अंतःस्फूर्त प्रेरणा कुंद पड़ने लगती है। ऐसे में बिना गुरु के सान्निध्य के स्वयं पथ के आरोहण की वह सोच भी नहीं पाता। एक तरह से साधक आंतरिक विकास की दृष्टि से कम्फर्ट जोन में रह रहा होता है, जिसके बाहर निकलने का साहस वह नहीं कर पाता और एकतरफे कर्मकाण्डीय ढर्रे पर उसका साधनापथ बढ़ रहा होता है।

यहाँ भगवान बुद्ध के जीवन के अंतिम दिनों से जुड़ा कथानक प्रासंगिक होगा। भगवान बुद्ध अपनी अंतिम शिक्षा दे चुके थे, उनका संसार से विदाई का समय समीप आ चुका था। उनके सबसे समीपस्थ एवं प्रिय शिष्य आनन्द की दशा गहरे अवसाद-विषाद से गुजर रही थी। दिन-रात भगवान बुद्ध के साथ रहने के कारण उनका प्रत्यक्ष संग-साथ एवं उपस्थिति आनन्द के जीवन का परम सत्य बन चुकी थी, हर उलझन एवं द्वन्द्व का समाधान ऐसे में चर्चा के साथ हो जाता। इस प्रत्यक्ष सान्निध्य एवं मार्गदर्शन के बिना आनन्द जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे।

अतः आकुल हृदय से आनन्द ने भगवान बुद्ध से प्रश्न किया कि भगवन आपके बिना हम कैसे रह पाऐंगे, कहाँ से मार्गदर्शन प्राप्त करेंगे, साधना पथ पर कैसे आगे बढ़ेंगे। उस समय बुद्ध भगवान ने आनंद को अप्प दीपो भव का उपदेश दिया था कि तुम सबको अपना दीप स्वयं बनना होगा। हमारा काम समाप्त हो चुका। जो शिक्षा, जीवन भर के अनुभव का सार हमें देना था, हम दे चुके हैं, अब उसे अपने जीवन का सत्य बनाने के लिए अनवरत प्रयत्न, चेष्टा एवं साधना स्वयं करनी होगी। मेरे संग-साथ की बैसाखी के सहारे अधिक दूर तक नहीं बढ़ सकोगे। स्वतंत्र चिंतन-मनन एवं आत्मसाधना द्वारा अपना प्रकाश स्वयं खोजो। जैसे-जैसे साधना पथ पर आगे बढते जाओगे, बुद्धि प्रज्ञा के आलोक में प्रकाशित होती जाएगी। इसी के साथ हमारा मार्गदर्शन जाग्रत प्रज्ञा के रूप में भीतर से ही मिलता जाएगा।

यही भारतीय परम्परा में गुरु के महत्त्व व गुरु की सीमाओं का सार है। शिष्य का धर्म गुरु की इच्छा, संकल्प एवं शिक्षाओं का सांगोपांग पालन करते हुए साधना पथ पर आगे बढ़ना है फिर गुरु स्वतः ही सद्गुरु के रूप में शिष्य के अंतःकरण में प्रतिष्ठित हो जाते हैं व उनका मार्गदर्शन सतत अंतःकरण से मिलता रहता है। उनकी स्थूल उपस्थिति का अभाव ऐसे में अप्रासंगिक हो जाता है। गुरु के प्रति श्रद्धा के साथ प्रारम्भ हुई

‘गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना’ वर्ष

यात्रा निष्ठा के सोपानों को पार करते हुए प्रज्ञा के रूप में अंतर में आलोकित होती है। इसी जाग्रत अंतर्प्रज्ञा के रूप में फिर सद्गुरु शिष्य-साधकों के आध्यात्मिक पथ को प्रकाशित करते हैं।

अप्प दीपो भव का सत्य हमें अध्यात्म पथ पर अपने आदर्श एवं गुरु के प्रति अंधभक्ति से भी सजग करता है। अपने विवेक के आधार पर उनकी शिक्षाओं का पालन व अनुसरण करना होता है। अपनी प्रकृति, स्वभाव, आवश्यकताओं आदि को देखते हुए अपनी राह गढ़नी होती है, शिक्षाओं को अपने अनुकूल ढालना होता है, जीवन पथ का अनुसंधान करना होता है, जो सबके लिए उनकी प्रकृति एवं स्वभाव के अनुरूप भिन्न होता है।

अप्प दीपो भव का संदेश हमें एक दीपक की भाँति घोर अंधकार के बीच जलने के लिए प्रेरित करता है। अंधकार कितना ही भारी क्यों न हो, यदि हम दीपक की तरह जलने के लिए कटिबद्ध हैं, तो यह साहस जीवन के प्रथ को आलोकित करने वाला सिद्ध होगा, जिसके प्रकाश में न जाने कितने अंधकार में भटक रहे राहियों को दिशा मिलेगी, प्रेरणादायी प्रकाश मिलेगा। इस तरह इसमें स्वयं प्रकाशित होने के साथ दूसरों के लिए प्रकाश स्तम्भ बन कर जीने का भी दर्शन निहित है।

यही एक शिष्य, एक साधक का साधना पथ है। अपनी गुरु की शिक्षाओं व इच्छा के सार को हृदयंगम करते हुए उस पथ पर एक नैष्ठिक साधक की भांति अपार धैर्य के साथ आरुढ़ रहना; अपने विवेक का प्रयोग करते हुए अपने आदर्श की शिक्षाओं को जीवन में धारण करना व आत्मज्ञान के प्रकाश में आध्यात्मिक पथ पर बढ़ते हुए चेतना के शिखर का आरोहण करना। इसे ही साधक का साधना पथ कह सकते हैं।

एक राजा ने एक बकरी पाली और प्रजाजनों की परीक्षा लेने का निर्णय किया कि जो इसे तृप्त कर देगा उसे सहस्र स्वर्ण मुद्राएँ पुरस्कार में मिलेंगी। परीक्षा की अवधि पन्द्रह दिन रखी और बकरी घर ले जाने की छूट दे दी। जो ले जाते, उसे भरपेट खिलाते और पन्द्रह दिन तक उसका पेट भली प्रकार भर देते। इतने पर भी जब वह दरबार में पहुँचती तो अपनी आदत के अनुरूप रखे हुए हरे चारे में मुँह मारती। प्रयत्न असफल चला जाता। इस प्रकार कितनों ने ही प्रयत्न किया पर वे सभी निराश होकर लौटे।

एक बुद्धिमान उस बकरी को ले गया। वह पीछे तो पेट भर देता, पर जब सामने आता तो छड़ी से बकरी की खबर लेता। वह उसे देखते ही खाना भूल जाती और मुँह फेर लेती। यह नया अयास जब पक्का हो गया तो वह बकरी को लेकर दरबार में पहुँचा। छड़ी हाथ में थी। उसके सामने हरा चारा रखा गया तो छड़ी को ऊँची उठाते ही उसने मुँह फेर लिया, राजा समझ गया कि वह पूर्ण तृप्त हो गई। इनाम उसे मिल गया। इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए राजपुरोहित द्वारा बताया गया कि तृष्णाएँ बकरी के सदृश हैं। वे कभी तृप्त नहीं होतीं। उन्हें व्रत, संकल्प और प्रतिरोध की छड़ी से ही काबू में लाया जा सकता है।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

निर्मल मन जन सो मोहि पावा

प्राचीन समय की बात है। संत ब्रह्मदेव गोदावरी नदी के तट पर वर्षों से एक छोटी सी कुटिया में रह रहे थे। वे सदा ही भगवान की भक्ति में डूबे रहते थे। त्रिकाल संध्या-वंदन, स्वाध्याय एवं अग्निहोत्र करना उनकी दिनचर्या का महत्त्वपूर्ण अंग था। भगवान की भक्ति करते-करते उनका मन पूर्णत: पावन, पुनीत व पवित्र हो चुका था। मन के सारे राग-विराग मिट चुके थे। मन की इस परम पावन व शांत अवस्था में वे जैसे ही भगवान का स्मरण करते वैसे ही समाधि की चरम अवस्था में पहुँच जाते थे।

वर्षों की तप-साधना से जब साधक का चित्त चिदाकाश बहुविध विकारों से मुक्त हो जाता है तब साधक को अपने चित्त चिदाकाश में ही सगुण-साकार अथवा निर्गुण-निराकार रूप में ईश्वर की अनुभूति होने लगती है। आत्मा में हर पल एक अलौकिक व दिव्य आनंद की अनुभूति होने लगती है। फिर साधक का परमेश्वर के प्रति प्रेम उसकी आँखों से अश्रु बनकर बहने लगता है। सदेह होते हुये भी वह विदेह हो जाता है। देह में होते हुये भी वह देहासक्ति से मुक्त हो जाता है। कर्म करते हुये भी वह कर्मासक्ति से मुक्त हो जाता है और इस प्रकार वह भौतिक संसार में रहते हुये भी हर पल अभौतिक व आत्मिक मनोदशा में ही स्थित रहता है।

ऐसे में साधक अपने आत्मिक जगत में प्रवेश कर उसी में सदा-सदा के लिये स्थित हो जाता है और अपने आत्मिक तल पर अवस्थित होते ही वह स्वयं को अजर, अमर, अविनाशी आत्मा मान, हर पल अलमस्त और आनंदित रहने लगता है। वह सचमुच आध्यात्मिक जगत का शहंशाह व बादशाह होता है क्योंकि वह निर्भीक, निर्मल, निर्विकार व निश्छल होता है। ऐसी मन:स्थिति प्राप्त करने पर वह स्वयं को ईश्वर का प्रतिनिधि राजकुमार मानने व महसूस करने लगता है। तब उसकी मानसिक दीनता, हीनता व दासता सर्वथा समाप्त हो जाती है। वह आलसी व प्रमादी नहीं बल्कि कर्मठ व पुरुषार्थी हो जाता है।

ऐसे में वह जिस ओर भी देखता है, वह ईश्वर को ही देखता है। वह जिस किसी को देखता है, उसमें ईश्वर को ही देखता है। इस प्रकार उसके लिये यह संपूर्ण सृष्टि ही ईश्वरमय दिखती है। आकाश में चमकते हुये तारे हों, पूनम की चाँदनी हो, पूरब से उगते सूरज की लाली हो, सागर में उठती ऊँची-ऊँची लहरें हों, हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलायें हों, या फिर रंग-बिरंगे खिले पुष्प हों, उन सबमें उसे परमात्मा का रूप, परमात्मा का सौन्दर्य दिखने लगता है।

संत ब्रह्मदेव भी अपनी वर्षों की तप-साधना व ईश्वरभक्ति के द्वारा ऐसी ही उच्च आध्यात्मिक स्थिति को प्राप्त कर चुके थे। वे सर्वथा ईश्वरीय भाव में रहते हुये लोगों को प्रेरणा दिया करते थे। एक बार संत प्रवर अपने पास आये हुये शिष्यों व अनुयायियों को ईश्वरभक्ति का ज्ञान दे रहे थे। तभी श्रोताओं में बैठे किसी शिष्य ने पूछा-गुरुवर! हमें बताया जाता है कि ईश्वर हर जगह मौजूद है, पर यदि ऐसा है तो वे हमें कभी दिखाई क्यों नहीं देते? फिर हम कैसे मान लें कि वो सचमुच हैं? और यदि वे हैं तो हम उन्हें कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

संत ब्रह्मदेव मुस्कुराये और उन शिष्यों को गोदावरी नदी के पास ले गये। उन्होंने कुछ शिष्यों को नदी किनारे जल में उतार दिया और नीचे बैठे कीचड़ आदि को निकालकर जल की बहती धारा पर छोड़ने को कहा। शिष्यों ने ऐसा ही किया। फिर संत ब्रह्मदेव बोले अब तुम लोग उस कीचड़ मिले जल में अपनी परछाई देखो। शिष्यों ने देखा गंदे पानी व पानी में उठती तेज लहरों में उनकी परछाई ठीक-ठीक नहीं दीख रही। उन सबने कहा, गुरुवर गंदे पानी व पानी में उठती हुई तेज लहरों के कारण हमारी परछाई न तो ठीक से दीख रही है, न ही स्थिर हो रही है। तब संत बोले- वत्स! तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर भी यही है। जैसे गंदे जल में तुम्हें अपनी प्रतिच्छाया दिखाई नहीं दे रही, वैसे ही मलरहित व चंचल मन में उठ रही विकारों की लहरों के कारण तुम्हें तुम्हारे अंतस में बैठे ईश्वर दिखाई नहीं दे रहे हैं।

उसके बाद संत प्रवर ने उन शिष्यों को नदी में बहते शांत व निर्मल जल में अपनी परछाई देखने को कहा। सभी शिष्यों ने ऐसा ही किया और उन सबने उस शांत व निर्मल जल में अपनी परछाई, तस्वीर को स्पष्ट रूप से देखा। संत ब्रह्मदेव ने कहा कि इस शांत व निर्मल जल की भांति जब तुम्हारा मन भी शांत व निर्मल हो जायेगा, तब तुम्हारे अंदर ही तुम्हें स्वयं के वास्तविक स्वरूप व ईश्वर के दर्शन होने लगेंगे क्योंकि जब नियमित तप-साधना से मन मलरहित हो जाता है और मन में उठ रही विकारों, वासनाओं, संस्कारों की लहरें शांत हो जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं, तब साधक को अपने आत्मस्वरूप का दर्शन स्वयं ही होने लगता है। तब उसे अपनी आत्मा में ही ईश्वर दिखाई पड़ने लगते हैं। इसलिये यदि तुम सब सचमुच ईश्वर को देखना चाहते हो, स्वयं को जानना चाहते हो तो अपने मन को विकारों से मुक्त कर निर्मल बना लो क्योंकि ईश्वर को निर्मल मन ही प्रिय है। जिसका मन पूर्णतः निर्मल होता है उसे ईश्वर की प्राप्ति अवश्य ही होती है, जैसा कि भगवान राम ने स्वयं कहा है-

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल-छिद्र न भावा॥

यह घटना सन् 1946 की है। बंबई बंदरगाह के नौसैनिकों ने विद्रोह का झंडा ऊँचा कर दिया था। अंग्रेज अधिकारियों ने उन्हें गोली से भून देने की धमकी दी थी, साथ ही भारतीय नौसैनिकों ने जवाब में उनकी खाक कर देने की चुनौती दे रखी थी। बड़ी भयानक स्थिति थी। उस समय बंबई का नेतृत्व सरदार पटेल के हाथों में था। लोग उनकी तरफ बड़ी घबड़ाई नजरों से देख रहे थे किन्तु सरदार पर परिस्थिति का रंच मात्र भी प्रभाव नहीं था। न तो वे अधीर थे और न विचलित।

बंबई के गर्वनर ने उन्हें बुलाया और काफी तुर्रा दिखाया। इस पर सरदार ने शेर की तरह दहाड़ कर गवर्नर से कह दिया कि वे अपनी सरकार से पूछ लें कि अंग्रेज भारत से मित्रों के रूप में विदा होंगे या लाशों के रूप में। अंग्रेज गवर्नर सरदार का रौद्र रूप देख कर काँप उठा और फिर उसने कुछ ऐसा किया कि बंबई प्रसंग में अंग्रेज सरकार को समझौता करते ही बना। ये ही सरदार पटेल थे जिन्होंने राष्ट्रीय एकता को सर्वोपरि मान स्वतंत्र भारत के प्रथम गृहमंत्री के रूप में 24 घंटे के भीतर बिना किसी शस्त्र का प्रयोग किए सारे रजवाड़े का भारतीय गणतंत्र में समावेश कर दिया था।

वस्तुतः साहस जैसी दैवी विभूति अनायास ही नहीं उपजती। यह वह निधि है जो प्रतिभाशाली व्यक्तित्वों के भीतर स्वतः उपस्थित होती है और इसे ही पुरुषार्थ द्वारा अपने अंदर विकसित कर उचित प्रयोजनों में लगा कर मानव जीवन को धन्य बनाया जाता है।

आत्म चेतना के आरोहण का पर्व

महात्मा बुद्ध ने मनुष्य को जीवन जीने की कला प्रदान की। यह घटना अद्‌भुत थी। उनका जन्म, बोध और मृत्यु एक ही तिथि वैशाख पूर्णिमा को हुए थे। बुद्ध पूर्णिमा से तात्पर्य ज्ञान की गहन आत्मचेतना से है। गौतम बुद्ध द्वारा की गई वर्षों की तपश्चर्या के बाद अर्जित निराकार अभिबोध के परमानंद में मंद-मंद लहराना और जीवन मृत्यु के काल रहस्यी की पहचान होना ही बुद्ध पूर्णिमा है। बुद्ध अर्थात् ज्ञान के ब्रह्माण्ड का परमाणु बनना। पूर्णिमा अर्थात् परमगति को प्राप्त होना।

महात्मा बुद्ध के अतुल आत्मबोध, बोद्धिसत्व और सब कुछ के उपरांत घटित उनका महाप्रयाण ही बुद्ध पूर्णिमा का समुचित सार है। राज्य, धन, ऐश्वर्य, आत्मज-स्वजन, सब कुछ छोड़ परम जीवन सत्य के शोध में निकले और अंतत: जीवोचित बोधत्व को प्राप्त करने वाले बुद्ध सदियों से अभिज्ञान तथा आत्मबोध के महान माध्यम बने हुए हैं। मानुषिक वैर, ईर्ष्या, धर्माडंबर, द्विचरित्रता, विश्वासघात तथा अनावश्यक मनुष्याभिनय, आग्रह-पूर्वाग्रह, भाग्य-दुर्भाग्य, संबंध-निबंध, आसक्ति-विरक्ति, स्वीकार-अस्वीकार, लगाव-अभाव जैसे अभिमानित जीवन समाज के दुर्गुणों से सुदूर आत्माकाश के टिमटिमाते सितारे महात्मा बुद्ध जीवन संबंधी दार्शनिक ज्ञान के अद्‌भुत प्रेरणा स्रोत बने।

महात्मा बुद्ध का जन्म लुंबिनी नामक स्थान में हुआ था परन्तु उनका लालन-पालन एक छोटे साम्राज्य कपिलवस्तु में हुआ था। ये दोनों ही क्षेत्र आज की भू-स्थिति में नेपाल में हैं। बुद्ध के जन्म के समय ये क्षेत्र या तो वैदिक सभ्यता की सीमा में थे अथवा उसके बाहर, यह सुनिश्चित नहीं है। बुद्धकाल में रचित परंपरागत जीवनी के अनुसार उनके पिता राजा शुद्धोधन शाक्य राष्ट्र के प्रमुख थे। शाक्य जनजाति कई पुरातन जनजातियों में से एक थी। महात्मा बुद्ध का पारिवारिक नाम गौतम था। उनकी माता रानी महामाया एक कोलियान राजकुमारी थी। जिस रात सिद्धार्थ ने अपनी माँ के गर्भ को धारण किया, रानी महामाया ने स्वप्न देखा कि छ: सफेद दाँतों वाला एक सफेद हाथी उनके पेट के दाईं ओर प्रवेश कर गया है। शाक्य कथानुसार यह भी बताया जाता है कि गर्भावस्था के दौरान गौतम की माता कपिलवस्तु छोड़ अपने पिता के देश चली गई थीं तथा यात्रा के दौरान ही राह में लुंबिनी स्थित एक बाग में साल के वृक्ष के नीचे उन्होंने एक शिशु को जन्म दिया।

इस प्रकार दस चन्द्र माह के बाद अर्थात् बैशाख पूर्णिमा को, जब चंद्रमा नभ पर दैदीप्यीमान था, महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ। उनके जन्म के सप्ताह भर बाद उनकी माता का देहावसान हो गया। गौतम के नामकरण संस्कार में ही उन्हें सिद्धार्थ नाम दिया गया, जिसका अर्थ है अपने संकल्पित लक्ष्य को प्राप्त करने वाला। उस युग के एक प्रसिद्ध भविष्यद्रष्टा एकांतवासी संत असिता को पूर्वाभास हो गया कि दुनिया में एक महान व्यक्ति आने वाला है। इस आशा में वे बुद्ध के जन्मोत्सव में आए। जब वे सिद्धार्थ के पिता से उनके भविष्य के बारे में मंत्रणा कर रहे थे तो बालक सिद्धार्थ ने उनके लंबे केशों में अपना एक पैर फँसा दिया। इस घटना और सिद्धार्थ के अन्य जन्मचिह्नों का संज्ञान लेकर उन्होंने बड़ी विचित्र मन:स्थिति में घोषित किया कि यह बालक या तो एक महान चक्रवर्ती राजा बनेगा या एक महान संत योगी। अन्य मनीषियों ने भी उनके बारे में अपनी दो-दो भविष्यवाणियाँ कीं। इनमें से केवल नौजवान कौंडिन्य संत ने निर्विकार रूप से कहा कि सिद्धार्थ एक बुद्ध बनेगा।

गौतम सिद्धार्थ का लालन-पालन राजसी ठाट-बाट से तो हुआ लेकिन उनकी मनोदशा सामान्य मानवीय जीवन के मनोरंजन और दूसरे आनंद देने वाले सुख-साधनों से विपरीत ही बनी रही। १६ वर्ष की आयु में पिता ने उनका विवाह यशोधरा से सुनिश्चित किया। यशोधरा ने राहुल नामक बालक को जन्म दिया। सिद्धार्थ ने कपिलवस्तु में गृहस्थी के २९ वर्ष व्यतीत किए। यद्यपि सिद्धार्थ को उनकी इच्छा तथा आवश्यकतानुसार प्रत्येक सुविधा व वस्तु उपलब्ध कराई गई थी, तथापि वे सघनता से अनुभव करते कि उनके जीवन का परम तथा अंतिम लक्ष्य कुछ और ही है। पिता की इच्छा थी कि सिद्धार्थ

एक महान राजा बनें। इस हेतु उन्होंने सिद्धार्थ को धर्म, वेद-पुराणों से लेकर मानवीय जीवन के कष्टों की गहन शिक्षा प्रदान की परंतु अंत में सब निष्फल सिद्ध हुए। वास्तविक जीवन लक्ष्यों की खोज हेतु २९ वर्ष की आयु में उन्होंने घर-परिवार और भव्य राजभवन त्याग दिया। वे एक अनिश्चित मार्ग पर बढ़ चले। यात्रा के दौरान उन्हें रोग-व्याधि, वृद्धावस्था से घिरे मनुष्यों और सार्वजनिक जीवन की कठिनाईयों-विसंगतियों को देखने का अवसर मिला तो वे मनुष्य जीवन में उत्पन्न होने वाली इन परिस्थितियों के प्राकृतिक कारक की खोज के लिए बेचैन हो उठे। युवक राजकुमार को अपने सारथी चन्ना की जीवन-मृत्यु संबंधी विवेचनाऐं भी उद्वेलित कर गईं। इसका प्रभाव यह हुआ कि उन्होंने सारथी को वापस भेज दिया और स्वयं ही अकेले यात्रा करने लगे।

राजा बिंबिसार ने सिद्धार्थ के तपस्वी जीवन का उद्देश्य सुनने के उपरांत और उनके त्याग से प्रभावित होकर उन्हें अपना सिंहासन सौंपने का प्रस्ताव रखा। सिद्धार्थ ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया लेकिन उन्हें वचन दिया कि अपनी तपस्या से उन्हें जो भी ज्ञानप्राप्ति होगा वे उनके राज्य मगध में उसका प्रथम प्रवचन करेंगे। आरंभ में सिद्धार्थ ऐसे संतों और साधकों के साथ तप करते रहे जो इन प्रक्रिया में व्यक्तिगत लक्ष्यहीनता से ग्रस्त थे। भूखा रहते हुए और भोजन को प्रतिदिन केवल एक दाने या पत्ते तक सीमित कर बुद्ध अत्यंत दुर्बल हो गए। ऐसी दुर्बलावस्था में एक दिन नदी में स्नान करते समय वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। किसी तरह वे नदी में डूबने से बच गए लेकिन ऐसे व्यवधान भी उन्हें उनके लक्ष्य से विचलित न कर सके।

बुद्ध ने बिहार, भारत में पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ वर्षों तपस्या की। यह वृक्ष बोधिवृक्ष के नाम से विख्यात है। साधना अवधि में वे तब तक चक्षु नहीं खोलते थे जब तक विचाारित विषय से संबंधित सत्यानुषंधान नहीं कर लेते थे। धर्म के बारे में तत्कालीन समाज में विभिन्न मतभेद व्याप्त थे। इस भय से बुद्ध निर्णय नहीं ले पा रहे थे कि वे मनुष्यों को धर्म का ज्ञान दें अथवा नहीं। वे चिंतित थे कि मानव लालच, ईर्ष्या और भ्रम की अतियों के कारण धर्म के सर्वोचित सत्य को समझने में असमर्थ होंगे, क्योंकि धर्म को समझने के लिए इसकी गूढ़ता, सूक्ष्मता और कठिनता आड़े आएगी।

बुद्ध द्वारा प्रशस्त आत्मसाधना मार्ग समस्त लोगों के लिए खुला था। इसमें किसी धर्म, वर्ग, जाति, उपजाति या समाज अथवा जीवन पद्धति संबंधी पूर्वाग्रह के कारण कोई प्रतिबंध न था। कहा जाता है कि विपक्षी धार्मिक समूहों द्वारा उनकी हत्या के अनेक प्रयास किए गए तथा उन्हें कारावास में डालने का प्रयत्न भी किया गया। बुद्ध ने ८० वर्ष की आयु में घोषणा की वे शीघ्र पारिनिर्वाण स्थित में पहुँचेंगे या एक ऐसी अवस्था में चिरस्थिर होंगे, जहाँ भौतिक शरीर को त्यागकर वे अंतिम मृत्युहीन दशा को प्राप्त होंगे। इसके उपरांत उन्होंने अपना अंतिम भोजन किया, जो उन्हें कुन्डा नामक लोहार ने भेंट स्वरूप दिया था। इसे ग्रहण करने के पश्चात वे गंभीर रोग से पीड़ित हो गए। रोगावस्था में उन्होंने अपने सहवर्त्ती को कहा कि- कुन्डा के पास जा कर उससे कहो कि उसके द्वारा दिए गए भोजन में बुद्ध की संभावित मृत्यु का कोई कारण नहीं है। मृत्यु के इस महाकष्ट में भी उन्होंने एक भिक्षु को दीक्षा प्रदान की।

अंत में वे मृत्यु को प्राप्त हुए अर्थात् उनका महापरिनिर्वाण हुआ। मृत्यु के बाद उनके शरीर का दाह-संस्कार किया गया है। बुद्ध की मृत्यु की वास्तविक तिथि सदा संदेह में रही। श्रीलंका के ऐतिहासिक शास्त्रों के अनुसार सम्राट अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध की मृत्यु के २१८ वर्ष पश्चात् हुआ। चीन के एक महायान प्रलेख के अनुसार अशोक का अभिषेक बुद्ध की मृत्यु के ११६ वर्ष पश्चात् हुआ। इसलिए थरावाड़ा प्रलेखानुसार बुद्ध की मृत्यु का समय या तो ४८६ ईसवी अथवा महायाना प्रलेखानुसार ३८३ ईसवी है। फिर भी पारंपरिक रूप में उनकी मृत्यु की जो वास्तविक तिथि थरावाड़ा देश में स्वीकार की गई- वह ५४४ या ५४३ ईसवी थी।

गौतम बुद्ध ने मानव जाति की दूषित मनोवृत्ति को परिशुद्ध करने की जो आध्यात्मिक योग क्रियाऐं निर्मित कीं, उनका महिमामंडन वैदिक चिंतन के अनेक प्रमुख शास्त्रों में भी किया गया है। स्वामी विवेकानंद ने भी उनकी व्यापक अभिप्रयाण प्रणालियों का सम्मानपूर्वक उल्लेख किया है। आज के भौतिकीय युग को बुद्ध के आत्म विकास के रास्तों पर चलने की अत्यंत आवश्यकता है तभी वर्तमान जनजीवन में मनुष्यों की धन के प्रति लिप्सा और इससे उत्पन्न होने वाली बुराईयों, विसंगतियों का अंत हो सकेगा।

हर कर्म पूजा बना लें

ईश्वरप्राप्ति के विविध साधनों में ज्ञान, कर्म व भक्ति बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसे हम क्रमश: ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग भी कह सकते हैं। एक ज्ञानयोगी ज्ञान के माध्यम से अपने वास्तविक आत्मस्वरूप का दिग्दर्शन करता है, ईश्वरसाक्षात्कार करता है, वहीं एक भक्तियोगी अपने निश्छल व निष्कपट प्रेम से प्रभु का सदैव चिन्तन, स्मरण करता हुआ, उनके गुणों का गायन करता हुआ उनका साक्षात्कार करता है तो वहीं एक कर्मयोगी अपने निष्काम कर्म से ही प्रभु का साक्षात्कार कर पाने में समर्थ होता है।

एक दृष्टि से देखें तो कर्म ही जीवन का सार है। इस जगत में हर किसी को कर्म करना ही पड़ता है। हर जीव को- पशु, पक्षी आदि को भी हम किसी न किसी कार्य में सक्रिय हुये देखते हैं। प्रकृति भी कर्मशील है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, नदियाँ, वनस्पति आदि सभी अपने कर्म में लीन हैं। फिर मनुष्य तो ईश्वर की सर्वोत्तम कृति है। वह इस सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ व बुद्धिमान प्राणी है तो फिर मनुष्य कर्म से विलग कैसे रह सकता है? यहाँ तक कि स्वयं भगवान भी कर्म से विलग नहीं हैं। गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि मेरे लिये कर्म करना आवश्यक नहीं फिर भी मैं कर्म में निरत रहता हूँ।

मनुष्य जीवन में जो भी कर्म करता है उसी के अनुरूप उसकी जीवनधारा व जीवन दिशा निर्धारित होती है। जीवन में सुख-दु:ख, लाभ-हानि, यश-अपयश, सफलता-असफलता, हर्ष-विषाद आदि सब कुछ हमारे कर्मों की ही अभिव्यक्ति हैं। हम जैसा कर्म करते हैं वैसा ही फल हमें प्राप्त होता है। वैसे ही जैसे यदि हमने बबूल बोया है तो बबूल ही उगेगा और आम बोया है तो आम ही उगेगा, आम ही फलेगा। जीवन के हर क्षेत्र में, चाहे हम किसान हों, मजदूर हों, खिलाड़ी हों, व्यापारी हों, उद्योगपति हों, वैज्ञानिक हों, चिकित्सक हों, अभियंता हों, अध्यापक हों या आम आदमी हों, हमारा यश-गौरव, हमारी सफलता-असफलता, हानि-लाभ, सुख-दु:ख आदि का आधार हमारे द्वारा किये गये कर्म ही तो हैं।

सत्य यह भी है कि जब तक हम स्वयं को कर्म के परिणाम से जोड़े रखते हैं, बाँधे रहते हैं, तब तक कर्म हमारे लिये बंधन का कारण होता है; क्योंकि कर्मों का अनुकूल परिणाम हमें क्षण भर के लिये हर्षित अवश्य करता है पर उस हर्ष में भी भविष्य में हमारे कर्मों के परिणाम क्या और कैसे होंगे- यह चिन्ता हमें हर पल सताती है, रुलाती है। उसी प्रकार कर्मों का प्रतिकूल परिणाम हमें वर्तमान में भी रुलाता है और भविष्य में उसी प्रकार के प्रतिकूल परिणाम मिलने की शंका, आशंका भी हमें पल-पल सताती, रुलाती और उदास करती है। इस प्रकार हमें सुख में भी दु:ख की आहट सुनाई पड़ती है और दु:ख तो दु:ख है ही। हमें हर्ष कुछ देर के लिए हर्षित अवश्य करता है पर उस हर्ष में भी कभी-कभी विषाद के आगमन की आहट हमें सुनाई अवश्य पड़ने लगती है।

इसलिये यदि हमें सचमुच सदा के लिए हर्ष में स्थापित होना है, सुख में स्वयं को स्थापित करना है तो हमें कर्म के हर प्रकार के अनुकूल व प्रतिकूल परिणामों से उपर उठना होगा। हमें हर्ष से भी ऊपर उठना होगा और विषाद से भी। हमें दु:ख के भी पार जाना होगा और सुख के पार भी। हमें बुरे, अशुभ व पापकर्मों से तो बचना होगा, पर साथ ही हमें शुभ, पुण्य व अच्छे कर्मों के परिणाम की चिंता व आसक्ति से भी स्वयं को मुक्त रखना होगा। यह तभी संभव है जब हम स्वयं को कर्म के परिणाम से न जोड़ें। स्वयं को कर्मों के परिणाम से न बाँधें। हम कर्म सिर्फ कर्म के लिये ही करें। वैसे भी हमारा अधिकार सिर्फ कर्म पर है उसके परिणाम पर बिलकुल नहीं।

जैसा कि गीताकार ने गीता में कहा है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात् तेरा अधिकार कर्म करने में ही है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिये तू कर्मों के फल का हेतु मत बन तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो।

शुभ कर्म, पुण्य कर्म, अच्छे कर्म करते हुये भी जब हम उसके परिणाम व फल की चिंता में होते हैं तब हमारी अधिकांश ऊर्जा तो कर्म के परिणाम व फल की

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

चिंता में ही समाप्त हो जाती है और फिर हम उस कर्म को सफलतापूर्वक पूर्णता तक नहीं पहुँचा पाते। उस कर्म में न तो हमारी तन्मयता होती है न ही एकाग्रता। इससे हमें भौतिक व आध्यात्मिक दोनों दृष्टि से हानि ही हानि होती है।

इसके विपरीत जब हम किसी कर्म को करते हुये, कर्त्तापन का भाव नहीं रखते, उस कर्म के होने वाले अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम से स्वयं को नहीं जोड़ते और उस कर्म को पूर्णत: निष्कामभाव से करते हैं और इस प्रकार अपने हर कर्म को ईश्वर को समर्पित करते रहते हैं तो हमारा हर कर्म ही पूजा बन जाता है। हमारा हर कर्म ही योग बन जाता है, फिर कर्मों का अनुकूल परिणाम या प्रतिकूल परिणाम हमें सुखी, दु:खी या प्रभावित नहीं करता; क्योंकि हमने स्वयं को कर्म के परिणाम से जोड़ा ही नहीं इसलिए हम कर्म के अनुकूल व प्रतिकूल परिणाम व सुख और दु:ख, हर्ष और विषाद आदि सभी को पार करते हुये, उन परिणामों के प्रभाव से ऊपर उठ जाते हैं। इसलिये सुख और दु:ख के पार जाकर हम आनंद में अवस्थित हो जाते हैं। समत्व में अवस्थित हो जाते हैं।

जो भी कर्म किए जाएँ, उसके पूर्ण होने और न होने में तथा उसके फल में समभाव रहने का नाम ही समत्व है। इस संबंध में गीताकार ने कितना सुन्दर कहा है-

योगस्थः कुरुकर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धय सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।
गीता २/४८

अर्थात् हे धनंजय! तू आसक्ति का त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्य कर्मों को कर। कर्मों में समत्व ही योग कहलाता है। सचमुच योग में स्थित हुआ साधक पुण्य और पाप, शुभ और अशुभ, सुख और दु:ख दोनों को ही त्यागकर उनसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार यह समत्वरूप योग ही कर्मों में कुशलता है अर्थात् कर्मबंधन से छूटने का उपाय है।

हम अपने हाथ में जो भी कार्य लें, उसे ईश्वर का कार्य मानें। यदि आप चिकित्सक हैं तो रोगी की चिकित्सा करते हुये रोगी को भगवान का रूप मानें, और संपूर्ण भाव से उसकी सेवा करें। यदि हम व्यापारी हैं, उद्योगपति हैं तो अपने उद्योग को, व्यापार को भगवान का मानें, व्यापार को बढ़ाने में अपना शत-प्रतिशत प्रयास करें, शेष भगवान के ऊपर छोड़ दें। व्यापार व उद्योग से होने वाले मुनाफे से स्वयं के साथ-साथ समाज को भी लाभान्वित करें। यदि आप अध्यापक हैं तो स्वयं को ईश्वर का उपकरण मात्र मानते हुये अपने पास बैठे हुये विद्यार्थियों को ईश्वर का रूप मानते हुये उन्हें ईमानदारी व निष्ठापूर्वक विद्यादान दें।

यदि आप अपने गाँव की गलियों की सफाई कर रहे हों तो मन में यही भाव रखें कि यह विराट ब्रह्मांड भगवान का ही आँगन है और आप गाँव की गलियों की सफाई कर स्वयं भगवान के आँगन की सफाई कर रहे हैं। कोई वृक्ष लगाते हुये मन में यही भाव रखें कि यह वृक्ष आप भगवान के आंगन में लगाकर भगवान की सृष्टि का श्रृंगार कर रहे हैं।

यदि आप विद्यार्थी या खिलाड़ी हैं तो आप अपनी सारी ऊर्जा व अपना प्रचंड पुरुषार्थ अपने काम में लगायें। खेलते हुये मन में यही भाव रखें कि आप स्वयं भगवान के लिये खेल रहे हैं। इससे आप खेल को खेल भावना से ही खेलेंगे। कोई अनुचित तरीका नहीं अपनायेंगे। साथी खिलाड़ियों में भी भगवान को खेलते हुये देखेंगे और स्वयं को खेल के परिणाम से न जोड़कर खेल को खेल की दृष्टि से खेलते हुये खेल का भरपूर मजा ले सकेंगे। आनंद ले सकेंगे।

इस प्रकार हम हर कार्य को कर्त्तापन की भावना से मुक्त होकर, उसे प्रचंड पुरुषार्थ के साथ करते हुये उसके अनुकूल-प्रतिकूल परिणाम से मुक्त रहकर, उस कार्य को ईश्वर को समर्पित करते हुये करें तो हमारा हर कर्म ही पूजा बन जायेगा। इससे शनै:-शनै: हमारा मन पावन होता जायेगा और इस प्रकार हमारा हर कर्म ही हमें ईश्वर से जोड़ने का साधन बन जायेगा और हमारा हर कर्म ही योग बन जायेगा। इससे हम न सिर्फ भौतिक जगत में बल्कि आध्यात्मिक जगत में भी सर्वोच्च शिखर को छूकर सदा आनंदित रह सकेंगे।

भगवान का पूजन करते हुये हम अक्सर भगवान की प्रतिमाओं पर जल, अक्षत, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि विभिन्न वस्तुयें अर्पित करते हैं, समर्पित करते हैं और धार्मिक-आध्यात्मिक दृष्टि से इसका महत्त्व भी है पर जैसे हम इन भौतिक सामग्रियों को अर्पित कर भगवान की पूजा करते हैं वैसे ही जब हम दूसरों के लिये करुणा, प्रेम, संवेदना आदि दिव्य भावनायें प्रकट करते हैं, अभिव्यक्त करते हैं, तब ये दिव्य भावनायें सर्वज्ञ, अंतर्यामी परमात्मा

को सूक्ष्मरूप में स्वत: ही समर्पित हो जाया करती हैं वैसे ही जैसे शिवलिंग पर जल, गंध और बिल्वपत्र आदि वस्तुयें हम अर्पित करते हैं।

जब हम निष्काम भाव से किसी पीड़ित, दीनहीन या जरूरतमंद व्यक्ति की सेवा करते हैं, सहायता करते हैं तब हमारी सेवा पाकर उस व्यक्ति के आँखों से खुशियों के आँसू टपक पड़ते हैं, तब उन आँसुओं से सच मानिये, भगवान भोलेनाथ के ज्योतिर्लिंग का अभिषेक स्वयं ही होने लगता है। भगवान की मूर्तियों का अभिषेक स्वयं ही होने लगता है। हमारी सेवा, सहयोग पाकर किसी के मुख पर उतर आई मुस्कान मानो भगवान की प्रतिमाओं पर हमारी ओर से अर्पित की गई किसी खिले हुये पुष्प सदृश ही होते हैं। जब हम किसी की प्राण रक्षा के लिये स्वयं का बलिदान करने को तत्पर हो जायें तब हमारा पावन पुनीत कर्म भी तो हमारी ओर से ईश्वर को अर्पित पूजन सामग्री ही है।

देश की आजादी के लिये चन्द्रशेखर आजाद, सुभाषचंद्र बोस, बिस्मिल आदि देशभक्तों ने अपना सर्वस्व बलिदान देकर निष्कामता के चरम को ही छूआ था। भारतमाता को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने, कराने हेतु भगत सिंह अपने गले में पड़े फाँसी के फँदे को चूमते हुये भी मुस्कुरा रहे थे। उनकी यह मुस्कान, उनका स्वयं का यह सर्वस्व बलिदान निष्काम कर्म के सर्वोच्च उदाहरणों में से एक है। लाल बहादुर शास्त्री, सरदार वल्लभ भाई पटेल, महात्मा गाँधी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम जैसे सृजेताओं ने अपने जीवन का क्षण-क्षण, पल-पल राष्ट्रदेवता के चरणों में समर्पित कर निष्काम कर्म का, कर्मयोग का सर्वोच्च उदाहरण प्रस्तुत किया। उसी प्रकार राष्ट्र एवं विश्वकल्याण हेतु प्राचीन काल के विभिन्न ऋषियों, मनीषियों, योगियों से लेकर आधुनिक युग में श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महर्षि रमण, स्वामी शिवानंद, परमहंस योगानंद, युगऋषि वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी आदि जैसे महान योगी व मनीषी भी आजीवन कर्मयोग की साधना में ही निरत रहे।

इसी तरह यदि हम अपने कर्त्तव्य कर्म को पूरी निष्ठा, ईमानदारी, सच्चाई व निष्कामभाव से कर सकें तो हमारा कर्म ही हमें ईश्वर से जुड़ने व जोड़ने का सबसे समर्थ साधन बन जायेगा और योग भी। समाज, राष्ट्र व विश्व के सभी लोग यदि इस प्रकार से कर्मयोग की साधना में लग जायें तो देखते ही देखते हर व्यक्ति के अंदर स्वत: ही देवत्व का जागरण व अवतरण होने लगेगा। ऐसे में यह संपूर्ण वसुंधरा खुद ही स्वर्गीय आनंद व मुस्कान से महक उठेगी।

अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनम्
आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलं फेनोपमं जीवनम्।
धर्मं यो न करोति निन्दिमतिः स्वर्गार्गलोद्घाटनम्
पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते॥

अर्थात्-इस संसार में धन पैर की धूल के समान है। जवानी पहाड़ी नदी के वेग के समान है। आयु पानी के चंचल बिन्दु के समान चंचल है। जीवन फेन अर्थात् बुदबुदे के समान है।

ऐसी स्थिति में जो मूर्ख स्वर्ग के द्वार को खोलने वाले धर्म का आचरण नहीं करता, वह बाद में वृद्धावस्था से ग्रस्त होकर ताप से युक्त हुआ शोकरूपी अग्नि में जलता रहता है।

व्यवहारिक बुद्धिमत्ता के अद्भुत प्रयोग

आवश्यकता आविष्कार की जननी है लेकिन यदि आवश्यकता हो और हमारे पास उसे उपलब्ध करने के लिए पर्याप्त पैसे व उपयोगी साधन न हों, तो ऐसी परिस्थिति में भी अपने पास उपलब्ध साधनों से अपनी आवश्यकता पूरी करने के जो प्रयास किए जाते हैं, उन्हें जोड़-जुगाड़ कहा जाता है। जब हमारी आवश्यकता पूरी करने में हाथों की कला और दिमाग की कल्पनाशीलता साथ देती है तो व्यक्ति अपनी प्रतिभा की उन्मुक्त अभिव्यक्ति कर पाता है। ऐसी स्थिति में कुछ सीमित साधनों से ही कुछ ऐसा बनकर तैयार होता है, जो हमारी आवश्यकता को तो पूरा करता ही है, साथ ही उसे देखने वाले भी अचरज में रह जाते हैं और उन्हें वाहवाही देने और दिल से उनका शुक्रिया कहते हुए उनकी प्रशंसा करने में पीछे नहीं हटते।

अपने हुनर का प्रदर्शन करने में प्रतिभा की, दिमाग की जरूरत होती है, न कि किसी डिग्री की और न ही कक्षाओं को उच्च अंकों से उत्तीर्ण करने की। वास्तव में वही शिक्षा कारगर है, जो हमारे जीवन को बेहतर बनाने में सहायक हो। यदि शिक्षा के माध्यम से हमारी प्रतिभा में निखार आ रहा है, तो ऐसी शिक्षा हमें ग्रहण करनी चाहिए और यदि ग्रहण की जाने वाली शिक्षा के कारण हम अपनी प्रतिभा की उन्मुक्त अभिव्यक्ति नहीं कर पा रहे हों, तो इसका मतलब है कि हमारी शिक्षा में जरूर कोई कमी है।

मेरठ के शिवाय गाँव के ६३ वर्षीय राजेश कुमार ने मात्र आठवीं तक की पढ़ाई की है, लेकिन उनके जोड़-जुगाड़ के माध्यम से होने वाले आविष्कारों से न केवल वहाँ के क्षेत्रवासी लाभान्वित हैं बल्कि आईआईटी, अहमदाबाद के विद्यार्थी भी उनसे सीखने आते हैं। व्यवसाय से किसान होते हुए भी राजेश ने अभी तक अनेकों ऐसे उपकरण बनाए हैं, जो कम खर्च में जीवन को आसान बना देने में सक्षम हैं।

इकोफ्रेन्डली आविष्कार करने में माहिर राजेश कुमार का कहना है कि किसान होने के नाते वे किसानों की दिक्कतों को समझते हैं, इसलिए पशुओं से खेत जोतने या बैठकर निराई-गुड़ाई करने की बजाय, उन्होंने कम लागत वाले मोटर वीटर के बारे में सोचा। उन्होंने सौर ऊर्जा का इस्तेमाल करके इसे तैयार किया है ताकि पेट्रोल या डीजल का खर्च भी न हो और इससे प्रदूषण भी कम हो।

इसके लिए उन्होंने कार के वाइपर में इस्तेमाल होने वाली मोटर तथा स्कूटर को स्टार्ट करने वाले बटन व हैंडल लगाकर सौर ऊर्जा से चलने वाला यह यंत्र तैयार किया। वे इस सौर ऊर्जा से चलने वाले यंत्र यानि 'सौर हल' को राष्ट्रपति भवन तथा रामेश्वरम् स्थित पूर्व राष्ट्रपति स्व. अब्दुल कलाम की समाधिस्थल पर आयोजित एक कार्यक्रम में प्रदर्शित भी कर चुके हैं। इसके अलावा आटा चक्की को भी उन्होंने संशोधित किया है। उसमें भी मोटर लगाकर उसे सौर ऊर्जा से चलाया जाता है। यह चक्की सुबह दस बजे से दोपहर तीन बजे तक करीब १० किलोग्राम आटा पीस लेती है।

इसके अलावा उन्होंने करीब चार साल पहले रसाई गैस की उपलब्धि हेतु लंबी लाइनों में खड़े रहने से तंग आकर घर पर ही बायोगैस प्लांट तैयार कर लिया था। पाँच ड्रमों से बना यह प्लांट इस तरह डिजाइन किया गया कि एक बार गोबर से ड्रम भर दिए जाने पर उससे फिर छह महीने तक की गैस का उत्पादन होता है।

जुगाड़ से नए आविष्कार करने में दूसरा उदाहरण मध्यप्रदेश के बड़वानी जिले के अंजड़ नगर के निवासी-जीतेन्द्र भार्गव का है। उनके जुगाड़ ने उन्हें कम लागत में ही मोटरबाईक का आनन्द दिलाया और साथ में प्रसिद्धि भी दिलायी। दरअसल उन्होंने अपनी साइकिल में इंजन लगाकर उसे मोटरबाइक में तब्दील कर दिया। अंजड़ की सड़कों पर दौड़ती उनकी साइकिल देख कर लोग आश्चर्यचकित रह जाते हैं। जीतेन्द्र भार्गव के अनुसार-मेरी साइकिल पुरानी हो चुकी थी, जिसे ठीक करने में ७-८ हजार रुपए का खर्च होना तय था। इसी बीच एक किसान को पावर पंप से खेत में दवा का छिड़काव करते देखा। किसान से पंप में होने वाली ईंधन की खपत और इंजन की कैपिसिटी को समझा। उसके बाद भार्गव ने उस इंजन को साइकिल में लगा दिया, साइकिल में एक ब्रेक

को एक्सेलेटर और एक को अगले और पिछले टायर में ब्रेक लगाने के लिए साथ जोड़ दिया। अब यह साइकिल इकोफ्रेंडली वाहन है और ३३ सीसी का इंजन इसकी खासियत है। इसे बनाने का कुल खर्च लगभग १० से १५ हजार रुपए है, जबकि इसके मेन्टिनेन्स पर इसका लगभग कोई खर्च नहीं आता है। इससे एक लीटर पेट्रोल में १०० से १२५ किलोमीटर तक जाया जा सकता है। यह ३० से ४० किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से सड़कों पर दौड़ सकती है।

जुगाड़ से अपना कार्य करने में तीसरा उदाहरण – राजस्थान के बारान जिले के बमोरी कलां गाँव के योगेश नागर का है जिन्होंने मात्र २० वर्ष की आयु में ट्रैक्टर को रिमोट कंट्रोल से चलाकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। यह आविष्कार उन्होंने अपने पिता रामबाबू नागर के लिए किया है। दरअसल उनके पिता की सेहत खराब होने के कारण वे खेत में काम करने में असमर्थ हो गए। जिसके कारण कोटा में बीएससी की पढ़ाई कर रहे योगेश को अपने गाँव लौटना पड़ा। यहाँ उन्होंने कुछ दिन खेतों में ट्रैक्टर चलाया, जिसके बाद उन्होंने कुछ ऐसा करने का सोचा, जिससे पिता घर बैठे ही अपने खेत में काम कर पाएं। उन्होंने पहले मात्र २,००० रुपए से रिमोट बनाया, जिससे ट्रैक्टर आगे व पीछे चलने लगा। फिर पिता के कुछ दोस्तों से आर्थिक मदद लेकर मात्र ५०,००० रुपए में रिमोट कन्ट्रोल से सिग्नल के जरिए ट्रैक्टर चलाने में सफलता हासिल कर ली। डेढ़ किलोमीटर की रेंज तक रिमोट से चलने में सक्षम यह ट्रैक्टर हरेक कार्य करने में कुशल है। अब इंदौर में बीटेक की पढ़ाई कर रहे योगेश सेना के लिए रिमोट से चलने वाला ऐसा ही टैंक बनाना चाहते हैं, जो दुर्गम परिस्थितियों में इस्तेमाल किया जा सके।

बाइक को पंजाबी में बंबूकाट कहते हैं। इस पर कुछ साल पहले बनी पंजाबी फिल्म 'बंबूकाट' ने देश-विदेश में खूब धूम मचाई थी, जिसमें फिल्म के हीरो को कबाड़ से एक बंबूकाट यानि मोटरबाइक तैयार करते दिखाया गया। इस बंबूकाट के वास्तविक रचनाकार हैं–चण्डीगढ़ के पास स्थित खरड़ निवासी रंजीत रंधावा। लंबे समय से कई तरह के वाहनों को शौकिया संशोधित करने वाले रंजीत यह बताते हैं कि ऐसी बाइक के लिए सामान इकट्ठा करना उनके लिए बड़ी चुनौती रही। इसके लिए उन्हें चण्डीगढ़ से लेकर पटियाला तक कबाड़ की दुकानों के चक्कर लगाने पड़े और फिर दिन-रात एक करके इसे तैयार किया गया। इसमें तेल की टंकी के स्थान पर दूध का डोलू, मारुति ८०० कार का इंजन, एक एग्जोस्ट फैन, एक टायर जीप का तो दूसरा रेहड़े का लगाया गया और तसले से सीट बनाई गयी।

बचपन से रचनात्मकता प्रवृत्ति वाले रंजीत यह बताते हैं कि जब वह छोटे थे, तो उन्होंने अपनी साधारण साइकिल में पुरानी गियर लगा ली थी, तो सभी ने उनके इस काम को सराहा। तभी से उन्होंने कुछ न कुछ नया करने का फैशन अपना लिया था और इस तरह के आविष्कार करना उनका शौक बन गया था।

जुगाड़ से अपना लाजवाब काम बनाने का चौथा उदाहरण– पंजाब के इंद्रपाल सिंह देओल का है। 'हनी बी क्वीन ऑफ पंजाब' के नाम से विख्यात उनकी स्वर्गीय पत्नी संगीता देओल की कर्मठता व सफलता के पीछे भी उनका विशेष हाथ रहा। पोलियोग्रस्त होने के बावजूद उनकी पत्नी संगीता ने पंजाब में वैकल्पिक कृषि को एक नया आयाम दिया और जब वे मधुमक्खी पालन करने लगीं, तो इन्द्रपाल सिंह ने विदेशी मशीनों की तर्ज पर एक ड्रम में जुगाड़ से पहले चार फ्रेम वाली मशीन तैयार की, जिसे बाद में आठ फ्रेम लगाकर अपग्रेड किया। छत्ते से शहद निकल जाने के बाद इस मशीन को बाहर निकालकर शहद किसी पात्र में इकट्ठा करना होता था। इस मुश्किल काम से निजात पाने के लिए इन्द्रपाल ने अन्दर ही एक पम्प लगा दिया, जिससे शहद आसानी से निकाला जा सकता था। कम लागत में तैयार हुए उनके इस आविष्कार ने संगीता के फार्म के शहद वाले काम को बेहद आसान बना दिया। आज अपनी पत्नी की अंतिम ख्वाहिश पूरी करने के लिए इन्द्रपाल सिंह यूपी के बहराइच स्थित नानपारा के खैरीघाट भहेड़ा गाँव में जरूरतमंद लोगों को मधुमक्खी पालन की विधि सिखा रहे हैं।

इस तरह व्यवहारिक बुद्धिमत्ता के माध्यम से हमारे देश के हुनरमन्द नागरिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहे हैं। उनके द्वारा किए जाने वाले ये आविष्कार निश्चित रूप से लोगों के लिए बहुत उपयोगी व कारगर हैं।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

आत्मिक संतोष का पर्याय है त्याग

हमारा देश आदिकाल से त्याग में प्रतिष्ठित रहा है। त्याग शब्द हमारे अस्तित्व में, हमारे व्यक्तित्व में, हमारे देश की मिट्टी में घुला हुआ है। त्याग भारत की संस्कृति में है, भारत के संस्कार में है। पता नहीं किस दुष्प्रभाव से हम अपनी संस्कृति और संस्कार को भूल गए हैं। विदेशी यात्री जो यहाँ पर पहले आए, जैसे- ह्वेनसांग, फाह्यान आदि, उन्होंने अपनी पुस्तकों में, अपने संस्मरणों में यह लिखा कि यहाँ पर घरों में कोई ताला नहीं लगाता है, यहाँ पर कोई चोरियाँ नहीं होती हैं, यहाँ पर कोई लूटमार नहीं होती है। यहाँ पर कोई किसी के धन पर नजर नहीं गड़ाता है।

हमने त्याग की महिमा भूली, हमने अपनी संस्कृति को भुलाया, हमने अपने संस्कारों को भुलाया, तो अब हमारी चर्चा दूसरे रूपों में इस तरह होती है कि अब पेपर व अखबारों में यह निकलता है कि हमारा देश दुनिया के सबसे भ्रष्ट देशों की सूची में इस स्थान पर है, अब हमारा ऐसा आकलन होता है लेकिन कभी विदेश से आने वाले यात्री हमारा आकलन करते थे कि भारत के लोग अतिथि देवोभव मानते हैं, चाहे किसी के घर में जाओ, यहाँ सभी घर अपने हैं, यहाँ खाने की कमी नहीं होगी, अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार सभी अतिथि सेवा के लिए तत्पर हैं। यहाँ कोई चोरी नहीं करता है, यहाँ कोई लूटमार नहीं होती।

हर्षवर्धन का समय, समुद्रगुप्त का समय- भारत के इतिहास में गौरव का काल कहा जाता है। हमने अपनी सीमाएँ कितनी विस्तृत कीं, चर्चा इस बात की नहीं होती है, हमने अपनी संस्कृति कितनी व्यापक बनाई, कितनी पावन बनाई, हमारे संस्कार कितने पावन थे, इस आधार पर भारतीय गौरव की समीक्षा की जाती है। त्याग हमारी संस्कृति में है, हमारे संस्कारों में है। हम दूसरों के सुख के लिए अपने हक को, अपनी उपलब्धि को, अपने वैभव को, अपनी विभूति को त्यागने की बात करते हैं। अपने सुख के लिए दूसरों का सुख छीनने की बात नहीं करते।

हमारी परंपरा दधीचि की है जिन्होंने देवत्व के संवर्धन के लिए, देवत्व के उन्नयन के लिए, उत्थान के लिए दैवीय सद्गुणों को विस्तृत करने के लिए अपनी अस्थियाँ दे डालीं, अस्थिदान भी कर दिया, संकोच नहीं किया। अगर हमारा शरीर किसी काम आ सकता है, अगर हमारे शरीर से वज्र बन सकता है, अगर हमारे शरीर से असुरता का आतंक समाप्त हो सकता है तो ऐसे में हम अस्थि दान देने को भी तत्पर रहते हैं।

समुद्रमंथन के समय जब सभी में अमृतपान करने की होड़ मची थी तो भगवान शिव ने कहा- सब लोग अमृतपान करो, लेकिन अगर विष किसी का नाश करने में समर्थ है, विष से सब कुछ नष्ट होने वाला है तो उस विष को हम पी लेते हैं। संसार को अमरता का दान देने के लिए भगवान शिव ने विष का पान कर लिया।

हमारे आराध्य, हमारी मार्गदर्शक सत्ताएँ, हमारे गुरु त्याग की महिमा में प्रतिष्ठित रहे हैं। बहुत पहले के दिनों में अखण्ड ज्योति में पंक्तियाँ छपती थीं। उसमें कविता की एक पंक्ति में है, ॅं **विष पीने का ज़ीक्ष्ज़्गल, अमृत की चाह नहीं करता।** मुझे अभ्यास पड़ गया विष पीने का, संसार का विष, दु:खों का विष मैं पीता चला जाता हूँ। अमृत की चाह मुझको नहीं है। अमृत मुझे मिले, इसकी परवाह नहीं है।

त्याग का अर्थ क्या है? जीवन का दान देना, अमृत का वितरण करना और त्याग के विपरीत क्या है? जीवन को छीन लेना। आप देखिए जो विजेता बनने के लिए निकले, वो अपनी उपलब्धियों को बढ़ाने के लिए, जीवन को छीनते चले गए, जीवन में विष घोलते चले गए। चंगेजखां, नादिरशाह, तैमूरलंग- सबके सब। इनके अभियानों ने संसार को क्या दिया? और हमने जो अभियान रचाया है, उसमें हमारी संस्कृति ने कहा, हमारे शास्त्रकारों ने कहा- **स्व स्व आचरेण शिक्षरेण पृथिव्यां सर्वमानवाः।** हम अपने आचरण से पृथ्वी के सभी प्राणियों को शिक्षा देंगे, शिक्षित करेंगे और जीवन के मंत्र सिखाएँगे।

भगवान बुद्ध के काल में सारे एशिया में भिक्षु पहुँचे, जीवन का सत्य बताने, जीवन का मंत्र सिखाने, जीवन का ज्ञान देने, जीवन विद्या का उपदेश देने पहुँचे।

त्याग होता है तो अकेला नहीं आता। अपने साथ तमाम सद्‌गुणों को खींच लाता है, समेट लाता है। जिस परिवार में लोग त्याग के लिए तत्पर होते हैं, उस परिवार में झगड़ा नहीं हो सकता। क्यों? झगड़ा होता ही तब है जब हम किसी का हक छीनना चाहते हैं। झगड़ा होता ही इस कारण है कि हम ज्यादा पाना चाहते हैं, जब हम सब कुछ हड़पना चाहते हैं, तभी झगड़ा होता है।

अगर राम अपना अधिकार त्यागने के लिए तत्पर हैं और भरत अपने सुख को त्यागने के लिए तत्पर हैं तो झगड़ा कहाँ है? झगड़ा तो तब खड़ा होता है जब कोई दुर्योधन कहता है कि मैं सुई की नोंक के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा इन पाण्डवों को, पाँच गाँव तो दूर की बात है, झगड़ा तब खड़ा होता है। जहाँ त्याग है, वहाँ प्रेम है। जहाँ त्याग है, वहाँ तृप्ति है। जहाँ त्याग है, वहाँ संतुष्टि है। जहाँ त्याग है, वहाँ शान्ति है।

बात परिवार की हो, बात समाज की हो, बात देश की हो या बात विश्व की हो, सारे झगड़े फैल रहे हैं, सारा विष घुल रहा है जीवन में, इसके पीछे केवल और केवल एक कारण है कि भीषण रूप से छीना-झपटी मची हुई है, आधिपत्य करने की होड़ मची हुई है। साम्राज्यवाद नया रूप लेकर सामने आ रहा है- आर्थिक साम्राज्यवाद।

आधिपत्य की इस दौड़ में सभी के जीवन की दशा बिगड़ गयी है क्योंकि हम त्याग का मूल मंत्र ही भूल गये हैं। कहीं से हम इसका अनुभव कर सकते हैं अपने निजी जीवन से अपने पारिवारिक जीवन से। अगर हम त्याग की डगर में थोड़ा-सा आगे बढ़ेंगे, तो हमारे जीवन में अमृत घुलने लगेगा, हमारे जीवन से विष का शमन होने लगेगा। विषैलापन विषाक्तता समाप्त होती जाएगी।

उपनिषद् कहते हैं कि जैसे-जैसे हम त्याग की ओर बढ़ते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है मानो हम इसके द्वारा अमृत तत्व पान कर रहे हों और इससे हमारा जीवन सिञ्चित हो रहा हो। इससे मन, तन सब स्थिर होने लगते हैं। भगवान गीता में कहते हैं कि त्याग से अधिक तो कुछ हो ही नहीं सकता। इसलिए कहते हैं कि **ध्यानात् कर्मफलः त्यागः त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्**।

शास्त्र कहते हैं कि सच्चे हृदय से त्याग करने पर तत्काल समाधि लगती है, बस त्याग आन्तरिक होना चाहिए, मानसिक होना चाहिए, आत्मिक होना चाहिए, अनुभूतिप्रगाढ़ होना चाहिए, फिर कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है।

त्याग साधना भी है और सिद्धि भी है। आप जहाँ भी प्रतिष्ठित हो जाएँगे, वहाँ आपको इसका अनुभव होने लगेगा। तब आपको लगेगा कि अब कुछ भी पाने के लिए शेष नहीं रहा। यही एक ऐसा लाभ है जिसके लिए कहते हैं कि **यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नादि तत्परम्** अर्थात् जिसको पा करके और कुछ पाना शेष नहीं रहता, अब क्या बचा? जब अन्त:करण में प्रसन्नता और शान्ति हिलोरें लेती हैं तो बाहर कुछ पाने की इच्छा नहीं होती। जो अन्दर से रिक्त है, वही बाहर के लिए दौड़ते हैं। अन्दर से कंगाल-भिखारी ही बाहर दुनिया में दौड़ते-भागते हैं।

कहते हैं कि एक बार तैमूर लंग ने एक राज्य पर हमला किया। तैमूर लंग को तैमूर लंग क्यों कहा जाता था? क्योंकि तैमूर लंगड़ा था। एक पैर उसका खराब था। जिसके ऊपर तैमूर लंग ने हमला किया, जिस सुल्तान के ऊपर हमला किया, वो सुल्तान भी अपंग था, काना था।

हमले के बाद सुलह हुई, समझौता हुआ और उसके बाद दोनों लोग मिल-बैठ के बातें कर रहे थे। सुलह-समझौते के अवसर पर बहुत से लोगों को बुलाया गया था, उनमें एक फकीर भी था। उस समय तैमूर हँसता हुआ सुल्तान से बोला कि मैं लंगड़ा और तुम काने, ये खुदा को भी क्या हो गया है? लंगड़े-कानों को सुल्तान बनाता रहता है। तैमूर परिहास की मनोदशा में था, हँसी कर रहा था, ठिठौली कर रहा था। हल्का-फुल्का वातावरण था।

लेकिन सभा में उपस्थित उस फकीर ने कहा- हुजूर! दरअसल लंगड़े-कानों को ही सल्तनत की जरूरत होती है। वो आत्महीनता की ग्रंथि से ग्रस्त रहते हैं। वे अपने अन्दर कुछ कमी महसूस करते हैं, जिसको वे बाहर पूरा करना चाहते हैं। जो अपने में जितना ज्यादा सन्तुष्ट-संतृप्त होता है, वो बाहर की उपलब्धियों की तरफ आँख उठाकर नहीं देखता। इसलिए जो आत्मा में प्रतिष्ठित होता है, वही त्याग में प्रतिष्ठित होता है। त्याग ही सवोच्च संतुष्टि का प्रमाण है।

सफलता के सोपानों पर चढ़ने के सूत्र

जीवन में आगे बढ़ने के लिए जो भी कदम बढ़ाया जाता है, वह हर कदम महत्त्वपूर्ण होता है। बढ़ाया जाने वाला कदम चाहे छोटा हो या बड़ा, हमें हमारी मंजिल तक पहुँचाने में सहायक होता है। जिस तरह हम एक-एक करके सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मंजिल तक पहुँचते हैं, न कि सब सीढ़ियों को एक साथ चढ़ते हुए- उसी तरह मंजिल तक पहुँचने के लिए हर कदम एक सीढ़ी की तरह होता है, जिस पर चलकर हम पहले से अधिक आगे बढ़ते हैं, पहले से अधिक ऊँचा उठते हैं। जिस तरह सीढ़ियाँ चढ़ने में सावधानी बरती जाती है, अति शीघ्रता में कभी-कभी पाँव फिसलने व गिरने का भी डर रहता है, उसी तरह मंजिल तक पहुँचने के लिए बढ़ाए जाने वाले कदमों में भी सावधानी का ध्यान रखना जरूरी है।

मंजिल तक ले जाने वाला हमारा हर प्रयास महत्त्वपूर्ण होता है, इस तथ्य को समझाने के लिए पंचतंत्र की एक कहानी प्रासंगिक है, कहानी कुछ इस तरह है-

एक जंगल में दो पक्षी रहते थे। उस जंगल के एक छोर पर एक वृक्ष था, जिसमें वर्ष में एक बार स्वादिष्ट फल लगते थे। जब फलों का मौसम आया, तो जंगल के उन दोनों पक्षियों ने वहाँ जाने की योजना बनाई। इस सन्दर्भ में पहले पक्षी ने दूसरे पक्षी से कहा कि 'वह वृक्ष यहाँ से बहुत दूर है, इसलिए मैं तो आराम से वहाँ पहुचूँगा। अभी फलों का मौसम दो माह रहेगा।' इस बात पर दूसरे पक्षी ने अतिउत्साहित होकर कहा कि 'नहीं मित्र! मुझसे तो रहा नहीं जा रहा है। उन स्वादिष्ट फलों के बारे में सोचकर ही मेरे मुँह से पानी आ रहा है। इसलिए मैं तो एक ही उड़ान में वहाँ पहुँचकर मीठे फल खा लेना चाहता हूँ।'

इसलिए दूसरे दिन दोनों पक्षी अपने घोसलों से निकलकर उस वृक्ष की ओर उड़ चले। कुछ दूर जाने पर पहले पक्षी को थकान होने लगी, तो वह विश्राम करने के लिए एक वृक्ष की टहनी पर ठहर गया। वहीं, दूसरा पक्षी उसे ठहरा हुआ देखकर मुस्कराया और तेजी से फलों की ओर उड़ने लगा। हालांकि वह भी थकान का अनुभव करने लगा था, पर उसे तो फल खाने की जल्दी थी। इसलिए वह बिना रुके ही उड़ता गया। अब उसे दूर से ही फलों वाला वृक्ष दिखाई देने लगा। फलों की सुगंध भी उसे आने लगी लेकिन तभी उसके पंख लड़खड़ाए, क्योंकि वह बुरी तरह थक चुका था। वह आसमान से जमीन पर जा गिरा। उसके पंख बिखर गए और वह उन फलों तक कभी नहीं पहुँच सका।

दूसरी ओर, पहला पक्षी जो रुक-रुक कर आ रहा था, वह फलों तक आराम से पहुँच गया। फिर उसने जी भरकर स्वादिष्ट फल खाए। इससे यह सीख मिलती है कि एक-एक कदम चल कर ही हम अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। साथ ही लक्ष्य तक पहुँचने के लिए जितना महत्त्व प्रयास व श्रम का है, उतना ही महत्त्व विश्राम का भी है। विश्राम करने से हमें मार्ग की थकान से राहत मिलती है और आगे बढ़ने के लिए ऊर्जा भी मिलती है। अतिउत्साह और लालच का परिणाम नुकसानदायक व हानिकारक हो सकता है। इसलिए मंजिल तक पहुँचने के लिए उत्साह तो बनाए रखना चाहिए, लेकिन अतिउत्साह में अपना नियंत्रण नहीं खोना चाहिए।

मंजिल तक पहुँचने के लिए हर व्यक्ति को प्रयास करना पड़ता है, श्रम करना पड़ता है। ये प्रयास व श्रम सार्थक तब माने जाते हैं, जब इनसे हमें मनोवांछित परिणाम मिलते हैं अन्यथा इन्हें निरर्थक मान लिया जाता है। प्रयास व श्रम- मनोवांछित परिणाम न मिलने पर भले ही निरर्थक प्रतीत हों, लेकिन फिर भी इनका महत्त्व होता है क्योंकि इनके कारण हम अपने जीवन में आगे बढ़ते हैं, इनसे हमें अनुभव की प्राप्ति होती है, इनके कारण हमें बहुत कुछ सीखने को मिलता है।

दुनिया में कोई भी कार्य एकाएक पूरा नहीं होता, लगातार प्रयास करने पर, निरंतर जुटे रहने पर, श्रम का संपुट जोड़ने पर कार्य पूरा होता है। जैसे कोई भी मकान एकाएक नहीं बन जाता है, बल्कि उसे बनाने में पर्याप्त समय लगता है। पहले मकान का नक्शा बनाया जाता है, फिर नींव खोदी जाती है, मकान बनाने के लिए आवश्यक सामग्री जुटाई जाती है, फिर योजनानुसार धीरे-धीरे मकान बनकर तैयार होता है। जिस तरह एक-एक ईंट को कुशलतापूर्वक रखकर और जोड़कर ही किसी श्रेष्ठ

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

भवन का निर्माण किया जाता है, एक-एक सीढ़ी चढ़कर ही किसी भवन की ऊपरी मंजिल तक पहुँचा जा सकता है- उसी तरह हमारे द्वारा किए जाने वाले छोटे-छोटे कार्यों द्वारा हम जीवन की बड़ी मंजिल को, बड़े लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं।

जो लोग अपने छोटे-छोटे कार्यों की उपेक्षा करके अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को सार्थक करने का स्वप्न देखते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि छोटी-छोटी सफलताएँ प्राप्त करते हुए चलने से जीवन में बड़ी सफलताएँ स्वतः प्राप्त होती हैं। जो व्यक्ति छोटी-छोटी सफलताओं को जीवन में महत्त्व नहीं देते, वे जीवन की बड़ी सफलताओं से भी वंचित रह जाते हैं।

महात्मा बुद्ध के अनुसार- 'आपके सामने जो कार्य हैं, उन्हें पूरे उत्साह एवं पूरी शक्ति के साथ करें। छोटा समझकर किसी कार्य की उपेक्षा न करें।'

महान व्यक्तियों की जीवनगाथाऐं यह तथ्य उजागर करती हैं कि छोटे-छोटे कर्त्तव्यपालन में उचित और अनुचित का विवेक रखकर ही वे महान बन सके। हमें यह सदैव याद रखना चाहिए कि हर छोटी-से छोटी चीज महत्त्वपूर्ण है। जिस तरह बारह महीनों को मिलाकर ही एक वर्ष बनता है; एक भी माह छूट जाने पर वर्ष पूर्ण नहीं होता- उसी तरह हमारा प्रत्येक कदम लक्ष्य की प्राप्ति का सूचक है, इसलिए छोटे-छोटे कदमों की अवहेलना न करते हुए उन्हीं को आत्मसात करना चाहिए और स्वयं पर विश्वास रखना चाहिए। वास्तव में हमें बड़े लक्ष्य की प्राप्ति के लिए छोटे-छोटे प्रयास ही निर्धारित करने चाहिए और उन्हें पूरा करते हुए लक्ष्य तक पहुँचना चाहिए।

यदि हमारे दस छोटे प्रयासों में से पाँच प्रयास असफल होकर हमें हतोत्साहित करते हैं, तो वे पाँच प्रयास जो सफल हो गए हैं, हमें उत्साहित भी करते हैं। किसी भी काम को करने में जल्दबाजी करना हमेशा नुकसानदायक होता है, क्योंकि जल्दबाजी में हमेशा गलतियाँ हो जाती हैं, कोई न कोई ऐसी भूल हो जाती है, जिसे सुधारना मुश्किल होता है, इसलिए सावधानी के साथ, पूरी सजगता के साथ, भली प्रकार सोच-समझकर अपना कार्य करना चाहिए, क्योंकि बिना सोचे-समझे किया गया कार्य विपत्तियों को आमंत्रण देता है और हमें हमारे लक्ष्य से भी दूर ले जाता है।

जो व्यक्ति सहजता से सोच-समझकर आराम से विचार करके अपना काम करते हैं, सफलता का शिखर उन्हें ही प्राप्त होता है। एक छोटा बालक जब चलना सीखता है, तो पहले वह घुटने के बल चलता है, फिर किसी वस्तु का सहारा लेकर धीरे-धीरे अपने पैरों पर खड़े होने का प्रयास करता है, फिर डगमगाते कदमों से आगे बढ़ता है। खड़े होकर चलने के इस प्रयास में बच्चा कई बार गिरता है, उसे चोट लगती है, वह रोता भी है, लेकिन हार नहीं मानता। बार-बार प्रयास करता है और एक दिन वह अपने प्रयास में सफल होता है। फिर वह न केवल चलता है, बल्कि दौड़ता भी है।

कहने का तात्पर्य है कि जिन रास्तों पर हमें चलने का अभ्यास नहीं है, उन रास्तों में से आगे बढ़ने पर पहले हमारे कदम लड़खड़ाते हैं, धीरे-धीरे ही जब हम उन राहों पर चलना सीख जाते हैं, तब ही हम दौड़ पाते हैं। यदि आरंभ में ही दौड़ने का प्रयास किया तो गिरने की संभावना ज्यादा होती है लेकिन धीरे-धीरे कठिन राहों में चलना सीखकर, फिर दौड़कर भी हम अपनी मंजिल तक पहुँच सकते हैं।

इस तरह जीवन में आगे बढ़ने वाले निरंतर छोटे कदम हमें बड़ी मंजिल तक पहुँचा ही देते हैं। हमें बड़ी मंजिल तक पहुँचकर बहुत सुखद अनुभव होता है, लेकिन बड़ी मंजिल तक पहुँचकर हम प्रायः उन छोटे कदमों को नजरअंदाज कर देते हैं, जिनके कारण ही हम उस बड़ी मंजिल तक पहुँचे हैं। उनका ध्यान रख कर ही हम सफलता के सोपान छू पाते हैं।

निरुद्देश्य पड़े-पड़े जीवन बिताना सुख नहीं है और सुख यह भी नहीं है कि आपका सारा काम दूसरे करते रहें और आप आराम से आदेश भर देते रहें, जबकि सुख है स्वयं भी कुछ काम करने में, कुछ उपयोगी काम करने में।

ममता का सागर है माँ

मई महीने के दूसरे रविवार को हर साल इंटरनेशनल मदर्स डे मनाया जाता है। ये दिन माँ के प्यार और सम्मान के लिए समर्पित है। वैसे तो माँ को हर दिन प्यार किया जाता है, लेकिन माँ को प्यार और सम्मान देने के लिए कई देशों में अलग-अलग तारीख पर मातृ दिवस मनाया जाता है। मदर्स डे के अवसर पर माँ के लिए खास प्यार और सम्मान जताया जाता है। माँ को विशेष महसूस कराया जाता है। इस दिन उन्हें तोहफा दिया जाता है, घुमाया जाता है अर्थात् जिन भी तरीकों से आप अपनी माँ से प्यार जता सकते हों, वे सब किए जाते हैं।

पूरी जिंदगी भी समर्पित कर दी जाए तो माँ के ऋण से उऋण नहीं हुआ जा सकता है। संतान के लालन-पालन के लिए हर दु:ख का सामना बिना किसी शिकायत के करने वाली माँ के साथ बिताये दिन सभी के मन में आजीवन सुखद व मधुर स्मृति के रूप में सुरक्षित रहते हैं। भारतीय संस्कृति में माँ के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा रही है, लेकिन आज आधुनिक दौर में जिस तरह से मदर्स डे मनाया जा रहा है, उसका इतिहास भारत में बहुत पुराना नहीं है। इसके बावजूद दो-तीन दशक से भी कम समय में भारत में मदर्स डे काफी तेजी से लोकप्रिय हो रहा है। मातृ दिवस समाज में माताओं के प्रभाव व सम्मान का उत्सव है।

माँ को सम्मान देने वाले इस दिन की शुरुआत अमेरिका से हुई। अमेरिकन एक्टिविस्ट एना जार्विस अपनी माँ से बहुत प्यार करती थीं। उन्होंने न कभी शादी की और न उनके कोई बच्चा था। वे हमेशा अपनी माँ के साथ रहीं। माँ के मौत होने के बाद प्यार जताने के लिए उन्होंने इस दिन की शुरुआत की। फिर धीरे-धीरे कई देशों में मदर्स डे मनाया जाने लगा। ९ मई १९१४ को अमेरिकी प्रेसिडेंट वुड्रो विल्सन ने एक कानून पास किया था, जिसमें लिखा था कि मई महीने के हर दूसरे रविवार को मदर्स डे मनाया जाएगा, जिसके बाद अमेरिका, भारत और कई देशों में मदर्स डे मनाया जाने लगा। वैसे तो माँ को प्यार करने और तोहफे देने के लिए किसी खास दिन की जरूरत नहीं, लेकिन फिर भी मदर्स डे के दिन माँ को और ज्यादा सम्मान दिया जाता है।

समूची धरती पर बस यही माँ का एक रिश्ता है, जिसमें कोई छल-कपट नहीं होता। कोई स्वार्थ, कोई अहंकार नहीं होता। इस एक रिश्ते में निहित है अनंत गहराई लिए छलछलाता ममता का सागर। शीतल, मीठी और सुगंधित बयार का कोमल अहसास। इस रिश्ते की गुदगुदाती गोद में ऐसी अनुभूति छुपी है कि मानो नर्म-नाजुक हरी ठंडी दूब की भीनी बगिया में सोए हों। माँ! इस एक शब्द को सुनते ही नारी के संपूर्ण अस्तित्व को तृप्ति प्राप्त हो जाती है।

नारी अपनी संतान को एक बार जन्म देती है, लेकिन गर्भ की अबोली आहट से लेकर उसके जन्म लेने तक वह कितने ही रूपों में जन्म लेती है अर्थात् एक शिशु के जन्म के साथ ही स्त्री के अनेक खूबसूरत रूपों का भी जन्म होता है। पल-पल उसके हृदय समुद्र में ममता की उद्दाम लहरें उठती रहती हैं। उसका रोम-रोम अपनी संतान पर न्यौछावर होने के विकल हो उठता है। नारी अपने कुंवारे रूप में जितनी सलोनी होती है, उतनी ही सुहानी वह विवाहिता होकर लगती है, लेकिन उसके नारीत्व में संपूर्णता आती है माँ बनकर। संपूर्णता के इस पवित्र भाव को जीते हुए वह एक अलौकिक प्रकाश से भर उठती है।

उसका चेहरा अपार कष्ट के बावजूद हर्ष से चमकने लगता है। उसकी आँखों में खुशियों के सैंकड़ों दीप झिलमिलाने लगते हैं। लाज और लावण्य से दमदमाते इस चेहरे को किसी भाषा, किसी शब्द और किसी व्याख्या की आवश्यकता नहीं होती है। 'माँ' शब्द की पवित्रता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि हिंदू धर्म में देवियों को माँ कहकर पुकारते हैं। बेटी या बहन के संबोधनों से नहीं। मदर मेरी और बीबी फातिमा का ईसाई और मुस्लिम धर्म में विशिष्ट स्थान है। माँ के प्रति कृतज्ञता

व्यक्त करने के लिए एक दिवस नहीं एक सदी भी कम है। किसी ने सही कहा है कि सारे सागर की स्याही बना ली जाए और सारी धरती को कागज मानकर लिखा जाए तब भी माँ की महिमा नहीं लिखी जा सकती है।

कहते हैं एक शिशु के जन्म के साथ केवल एक बालक ही जन्म नहीं लेता है, बल्कि उसी क्षण स्त्री के भीतर माँ भी जन्म लेती है। यूँ तो स्त्री का सर्वथा पूजनीय रूप माँ ही है, किंतु माँ का महत्त्व माँ बनने के बाद ही सही-सही समझा जा सकता है।

नारी अकेले को ही यह विशेष अधिकार वरदान के रूप में प्राप्त है कि वह माँ बनने की इस दैवीय प्रक्रिया को महसूस कर सके व उसके अनन्त आनन्द को आत्मसात कर सके। माँ से लगाव व प्रेम की तो कोई सीमा ही नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय मातृ-दिवस को मनाते हुए मातृ-महिमा पर छा रहे ऐसे अनेक धब्बों को मिटाना जरूरी है, तभी इस दिवस की सार्थकता है। मातृ दिवस पर हर माँ को उसके अनमोल मातृत्व की बहुत सी शुभकामनाऐं।

राम-रावण युद्ध के समय की घटना है। महावीर हनुमान ने देखा कि एक क्षुद्र प्राणी इधर-उधर दौड़ रहा है। उन्होंने उसे अपने हाथों में थाम लिया, तुम यहाँ क्यों दौड़-भाग कर रहे हो, यहाँ तुहें चोट लग सकती है। चोट से क्या डर, उस क्षुद्र प्राणी ने कहा- रामकाज में प्राण निकलें, मेरी तो यही कामना है। तुम क्या रामकाज कर रही हो गिलहरी? वह क्षुद्र प्राणी गिलहरी थी, उससे हनुमान ने पूछा। मैं आपकी ही भांति प्रभु के सेतुबन्धन में सहयोगी हूँ। अब आपकी भांति भारी-भरकम शिलाएँ तो ला नहीं सकती इसलिए मैं धूल में लोटकर अपने शरीर के रोएँ में धूल भर लेती हूँ, फिर जहाँ सेतु बन रहा है, वहाँ यह धूल झाड़ देती हूँ। बहुत ज्यादा न सही लेकिन कुछ सहयोग तो कर ही रही हूँ।

उस गिलहरी की बातें सुनकर महावीर हनुमान का भी कण्ठ रुद्ध हो गया। उनके भाव भीग गए। वे चाहते थे कि वे उसे भगवान तक पहुँचा दे परन्तु गिलहरी ने उनसे कहा- तुम तो भली-भाँति प्रभु का स्वभाव जानते हो महाबली! वे भला अपने भक्त को कब बिसारते हैं। वे स्वयं ही मुझे बुला लेंगे, तब तक मुझे अपना काम करने दें। ऐसा कहकर वह गिलहरी हनुमान के हाथों से उछलकर अपने उसी काम में जुट गयी। हनुमान चकित हो उसकी भक्ति को निहारते रहे। उन्होंने सोचा- भगवान तो संकटहारी हैं, अगर यह भक्त संकट में पड़े तो वे जरूर उसे अपने पास बुला लेंगे। ऐसा सोचकर उन्होंने अपने पाँव के नाखून से बहुत धीरे से गिलहरी की पूँछ दबा दी। उस गिलहरी ने इस पीड़ा से तड़पकर राम नाम का स्मरण किया।

भक्त गिलहरी की पीड़ा से विकल भगवान राम दौड़ कर आए और उस गिलहरी को अपने हाथों में उठा लिया। फिर हनुमान की ओर कृत्रिम रोष से देखते हुए गिलहरी से बोले- प्रिय गिलहरी! तुम महाबली को उनके इस कृत्य के लिए क्या दण्ड देना चाहती हो। उत्तर में गिलहरी मुस्करा दी और बोली- प्रभु! भला भक्तों के संकटमोचन, कभी किसी भक्त को संकट में डाल सकते हैं। इन्होंने मुझे आप तक पहुँचाने के लिए यह किया था। इसलिए इन्हें तो पुरस्कार मिलना चाहिए। गिलहरी के इस कथन पर हनुमान की आँखें भीग गयीं और श्रीराम मुस्करा दिए।

ईश्वरप्राप्ति का सबसे सुगम मार्ग है भक्ति

भक्तियोग ईश्वरप्राप्ति का सबसे सरल और सुगम मार्ग है। ईश्वरप्राप्ति के समस्त साधनों में, सभी मार्गों में भक्ति का मार्ग अत्यंत सरल और सुगम है। भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेम है। यह निष्कपट भावना है। भक्ति का आरम्भ, मध्य और अंत भी प्रेम ही है। सचमुच ईश्वर के प्रति सच्ची प्रेमोन्मत्तता का होना इस मानव जीवन का सबसे बड़ा गौरव है और परम सौभाग्य भी पर इस सौभाग्य की प्राप्ति बिरले ही कर पाते हैं।

व्यक्ति का मन यदि वासनाओं से भरा है, कामनाओं से भरा है तो वहाँ प्रेम जैसी दिव्य भावनाओं का होना कैसे संभव है? वहाँ परम प्रेम का होना कहाँ संभव है? क्योंकि अमावस की घनी अंधेरी रात और पूनम की चाँदनी से भरी रात दोनों एक साथ नहीं रह सकते। उजियारा और अंधियारा दोनों एक साथ नहीं रह सकते। जैसा कि कहा गया है-जहाँ काम वहाँ राम नहीं, जहाँ राम वहाँ काम नहीं। अर्थात् जिस हृदय में राम उतर आये हैं, वहाँ काम का और जहाँ काम है वहाँ राम का रहना संभव नहीं। जैसे चोरों को चाँदनी रात नहीं सुहाती वैसे ही प्रेम को वासना और कामना नहीं सुहाते क्योंकि उनमें से किसी एक के होने पर दूसरे का होना संभव नहीं है।

प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति के मन में जब वासनायें, कामनायें, भरी पड़ी हैं तब वह प्रभु की भक्ति करे भी तो कैसे करे? इसके लिये क्या शास्त्रों ने कोई सरल उपाय बताये हैं। यदि हाँ तो वे उपाय क्या हो सकते हैं? शास्त्रों में मन को वासनाओं व कामनाओं से मुक्त कर उसे शुद्ध व निर्मल करने के असंख्य उपाय बताये गये हैं। उनमें भी भक्ति ही सर्वोपरि है क्योंकि भक्ति साधना भी है और साध्य भी। माना कि मन वासनाओं से भरा है, कामनाओं से भरा है पर वासना न तो वासना से दूर होगी और न ही कामना, कामना से। हाँ! यदि वासना व कामना से भरे चित्त में भक्ति का दीप जल उठे, तो उस भक्ति के उजियारे से चित्त में व्याप्त वासनाओं, कामनाओं व संस्कारों का अंधियारा मिट सकता है और हमेशा-हमेशा के लिये मिट सकता है।

चित्त का अंधियारा मिटते ही वह भक्ति का उजियारा अपने परम रूप में, अपने चरम रूप में प्रकट हो फैलेगा और उसी उजियारे में, उसी परम प्रकाश में हमें अपनी आत्मा की अन्तर्ज्योति प्रकट हुई, प्रज्ज्वलित हुई दीख सकेगी। उसी परम प्रकाश में हमें अपने वास्तविक स्वरूप के दर्शन हो सकेंगे।

भक्तिसूत्र में नारद जी कहते हैं कि "भगवान के प्रति उत्कट प्रेम ही भक्ति है।" जब मनुष्य इसे प्राप्त कर लेता है तो सभी उसके प्रेमपात्र बन जाते हैं। वह किसी से घृणा नहीं करता। वह सदा के लिये संतुष्ट हो जाता है। इस प्रेम से किसी काम्य वस्तु की प्राप्ति की कामना रह ही नहीं जाती क्योंकि चित्त में जब तक सांसारिक वासनायें रहती हैं, तब तक वहाँ दिव्य प्रेम का उदय ही नहीं होता। जब भक्ति करते हुये चित्त के सारे मल धुल जाते हैं तब साधक का रोम-रोम प्रेमोन्मत्त हो जाता है। उसका हृदय प्रेमरस से छलछला उठता है।

उसका हृदय परमप्रेम को धारण करते ही समुद्र-सा गहरा और विशाल हो जाता है। उसमें हर पल प्रेम की ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगती हैं। प्रेम का वह अथाह सागर देखते-देखते स्वयं साधक एवं इस संपूर्ण सृष्टि को अपने प्रेमागोश में भर लेता है। तब साधक की प्रेममयी दृष्टि से सारा विश्व ही प्रेममय दीखता है, ईश्वरमय दीखता है। उसके हृदय में ईश्वर को पाने की आकुल पुकार उठने लगती है। उसका रोम-रोम पुलकित हो उठता है। उसके हृदय सिन्धु से प्रेम का वेग आँखों से होकर बहने लगता है। ध्रुव, प्रह्लाद, मीरा, चैतन्य महाप्रभु, सूरदास, श्रीरामकृष्ण परमहंस आदि भक्तिमार्ग के महान मनीषियों, योगियों के जीवन में प्रभुप्रेम के ऐसे ही प्रसंग हमें देखने व सुनने को मिलते हैं।

नारद जी के कहने पर जब बालक ध्रुव ने सच्चे हृदय से भगवान को पाने के लिये आकुल पुकार की तो नारायण ने स्वयं प्रकट होकर भक्त ध्रुव को अपने अंक में भर लिया। बालक प्रह्लाद भक्तिमार्ग पर चलते हुये नानाविध संकटों व प्रतिकूल परिस्थितियों से लड़ता रहा, जूझता रहा पर प्रभु की भक्ति से पलभर के लिये भी

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

विचलित न हुआ और अंतत: उसे प्रभु की प्राप्ति होकर रही। मीराबाई ने भी नानाविध संकटों कठिनाइयों व चुनौतियों से अविचलित रहते हुये अंततः अपने गिरधर गोपाल को पा ही लिया।

ऐसा हमारे जीवन में भी घटित हो सकता है यदि हममें भी ईश्वर को पाने की वैसी ही आकुलता हो। सच्ची और आकुल पुकार के कारण ही माँ जगत्‌जननी जगदंबा को स्वामी श्रीरामकृष्ण परमहंस के समक्ष प्रकट होना पड़ा था। उसी प्रकार अपनी अटूट श्रद्धा व निष्काम भक्ति के कारण ही युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने आदिशक्ति गायत्री का साक्षात्कार किया था।

प्रेम वह ब्रह्मास्त्र है जो कभी खाली नहीं जाता, कभी निष्फल नहीं जाता। प्रेम के बल पर भक्त अंततः भगवान को पा ही लेता है। भगवान को किसी वस्तु की चाह नहीं, उन्हें भाँति-भाँति की पूजन सामग्रियों से न तो प्रभावित किया जा सकता है न ही आकर्षित पर यदि प्रेम सच्चा हो, निष्कपट हो, निष्काम हो तो प्रभु शबरी के जूठे बेर खाने को भी तत्पर हो जाते हैं, वे दुर्योधन का छप्पन भोग त्यागकर विदुर के घर केले का छिलका व साग भी पाने को व्यग्र हो उठते हैं। गीताकार ने गीता में स्वयं की कहा है-

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थात्- जो कोई भक्त मेरे लिये प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध-बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

भक्तिमार्ग के साधकों के लिये सबसे बड़ी सुविधा यह है कि यदि स्थूल भौतिक सामग्रियों से भगवान का पूजन करना संभव न हो सके तो वे ईश्वर का मानसिक पूजन करके भी उन्हें रिझा सकते हैं, उन्हें अपना बना सकते हैं। बस सिर्फ भावना निष्कपट होनी चाहिये। प्रेम निष्काम होना चाहिए। भक्ति अटल व अविरल होनी चाहिये। मानसिक पूजन के अंतर्गत शांत चित्त होकर किसी शांत, एकांत व पुनीत, पावन वातावरण में बैठकर भगवान के विग्रह का साकार ध्यान करते हुये या उनके निर्गुण-निराकार रूप का ध्यान करते हुये यह भावना करनी चाहिये कि मेरे पास गंगोत्री का पावन गंगाजल स्वर्ण कलश में भरा है उससे मैं अपने आराध्य का, प्रभु का अभिषेक कर रहा हूँ।

ऐसा सोचना चाहिए कि मैं प्रभु को सुन्दर वस्त्र समर्पित कर रहा हूँ। मैं सुगंधित चन्दन का लेप प्रभु को समर्पित कर रहा हूँ। इस वसुन्धरा के समस्त सुगंधित व रंग-बिरंगे खिले हुये ताजा पुष्प जो मैंने अभी-अभी तोड़े हैं, उन्हें अपने प्रभु को समर्पित कर रहा हूँ। मैं प्रभु को विविध प्रकार के फल एवं धूप, दीप, नैवेद्य समर्पित कर रहा हूँ। तत्पश्चात् भावविह्वल होकर ध्यानावस्था में ही अपने प्रभु की महिमा का गायन करें। प्रभु के करुणा, प्रेम, न्याय, सत्य, क्षमा, पवित्रता आदि सद्‌गुणों का बार-बार स्मरण करें व उन्हें हृदयंगम भी करें। स्वर्ण थाल में सूर्य और चंद्र को दीप के रूप में, ज्योति के रूप में सजाकर प्रभु की आरती करें।

इस प्रकार स्थूल व सूक्ष्म रूप से प्रभु का नित्य पूजन, स्मरण, भजन आदि करते रहें। इससे चित्तशुद्धि होगी व भगवत दृष्टि विकसित होगी जिससे प्रभु का परम प्रेम भी प्राप्त हो सकेगा और जीवन का परम लक्ष्य भी। अत: हम जैसे भी हैं, पवित्र हैं, अपवित्र हैं, साधु हैं, सदाचारी हैं या दुराचारी हैं- हम भगवान के हैं और भगवान हमारे हैं। हमें भी भगवान को पाने का अधिकार है। भगवान सर्वव्यापी हैं, सर्वज्ञ हैं, समदर्शी हैं। वे सबके लिए सुलभ हैं; क्योंकि उनकी नजर में सब एक समान ही हैं। हम भी प्रभु को भक्ति से अवश्य ही प्राप्त कर सकते हैं। गीता में प्रभु ने हमें स्वयं ही ऐसा आश्वासन भी दिया है-

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यम्॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

अर्थात् भगवान कहते हैं कि मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मुझको प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें है और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ। यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है अर्थात् उसने भलीभांति अब यह निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

जल संचयन की अनिवार्य आवश्यकता

वर्षा के प्रारंभ होने की खबर लोगों को भीषण गर्मी के प्रकोप से राहत देने वाली होती है व साथ में वर्षा जल संचयन की ओर ध्यान भी आकर्षित करती है। देश भर में व्याप्त भयंकर जल संकट की स्थिति से उबरने के लिए वर्षा के जल की बूँद-बूँद को बचाने का समय आ चुका है। दरअसल, पहले गाँवों में वर्षा का जल संचयन परंपरा का एक अभिन्न अंग हुआ करता था। लोग पानी की बर्बादी को पाप समझते थे लेकिन तीव्र गति से हो रहे नगरीकरण की चपेट में गाँवों के आने के कारण वर्षा के जल संचयन की प्रवृत्ति भी अब हवा में उड़ती नजर आने लगी है।

गौरतलब है कि दुनिया के सर्वाधिक बारिश होने वाले क्षेत्रों में भारत भी है, यहाँ हर वर्ष बर्फ पिघलने और वर्षा जल के रूप में औसतन ४००० अरब घन मीटर पानी प्राप्त होता है। जबकि यह देश वर्षा जल के १८६९ अरब घनमीटर (मतलब सिर्फ ४६ प्रतिशत) पानी का उपयोग कर पाता है। बाकी ५४ प्रतिशत पानी व्यर्थ में बहकर नदी-नालों के द्वारा समुद्र में चला जाता है। मणिपुर से भी छोटे इजराइल जैसे देशों में जहाँ वर्षा का औसत २५ सेमी से भी कम है, वहाँ भी जीवन चल रहा है। वहाँ जल प्रबंधन तकनीक अति विकसित होकर जल की कमी का आभास नहीं होने देती, अपितु कृषि से कई बहुमूल्य उत्पादों का निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित कर रहा है, तो ये कार्य भारत क्यों नहीं कर सकता?

बारिश के पानी को विभिन्न स्रोतों व प्रकल्पों में सुरक्षित व संग्रहित रखना व करना वर्षा जल संचयन कहलाता है। वर्षा जल संचयन वर्षा जल के भंडारण को संदर्भित करता है, ताकि जरूरत पड़ने पर बाद में इसका उपयोग किया जा सके। इस तरह व्यापक जलराशि को एकत्रित करके पानी की किल्लत को कम किया जा सकता है। भारत में पेयजल संकट एक प्रमुख समस्या है। भूमिगत जल का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है और इस वजह से पीने के पानी की कमी बढ़ रही है। सिकुड़ती हरित पट्टी इसका मुख्य कारण है।

पेड़ों से जहाँ पर्याप्त मात्रा में वर्षा हासिल होती है, तो वहीं यही पेड़ भूमिगत जल का स्तर बनाये रखने में भी अहम् भूमिका निभाते हैं लेकिन द्रुत गति से होने वाले विकास कार्यों ने हमारी हरित पट्टी की तेजी से बलि ली है। उसी का नतीजा है कि न सिर्फ भूमिगत जल का स्तर नीचे गया है, बल्कि वर्षा में भी लगातार कमी आई है। गौरतलब है कि भारत में दो सौ साल पहले लगभग २१ लाख ७ हजार तालाब थे। साथ ही लाखों कुएं, बावड़ियाँ, झीलें, पोखर और झरने भी थे। हमारे देश की गोदी में हजारों नदियाँ खेलती थीं किंतु आज उन हजारों नदियों में से केवल सैकड़ों ही बची हैं। वे सब नदियाँ कहाँ गईं, कोई नहीं बता सकता है।

जिस देश में ७० प्रतिशत हिस्सा पानी से घिरा हो, वहाँ आज स्वच्छ जल का उपलब्ध न हो पाना विकट एवं गंभीर समस्या है। आज देश में करीब ६० करोड़ लोग पानी की गंभीर संकट का सामना कर रहे हैं। करीब दो लाख लोग स्वच्छ पानी न मिलने के चलते हर साल जान गँवा देते हैं। नीति आयोग द्वारा जारी 'समग्र जल प्रबन्धन सूचकांक' रिपोर्ट में यह खुलासा हुआ है। जिसमें कहा गया है, सन् २०३० तक देश में पानी की माँग उपलब्ध जल वितरण की दोगुनी हो जाएगी। जिसका मतलब है कि करोड़ों लोगों के लिए पानी का गंभीर संकट पैदा हो जाएगा और देश की जीडीपी में छः प्रतिशत की कमी देखी जाएगी। इस बड़ी समस्या को अकेले या कुछ समूह के लोग मिलकर नहीं सुलझा सकते हैं। भविष्य में जल की कमी की समस्या को सुलझाने के लिए जल संरक्षण ही एकमात्र समाधान है।

वर्षा जल संचयन कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है। वर्षा के जल का उपयोग घरेलू काम मसलन घर की सफाई प्रयोजनों, कपड़े धोने और खाना पकाने के लिए किया जा सकता है। वहीं औद्योगिक उपयोग की कुछ प्रक्रियाओं में इसका उपयोग किया जा सकता है। गर्मियों में वाष्पीकरण के कारण होने वाली पानी की कमी को 'पूरक जल स्रोत' के द्वारा कम किया

जा सकता है, जिससे बोतलबंद पानी की किमतें भी स्थिर रखी जा सकेंगी।

यदि एक टैंक में पानी का उचित रूप से संचयन करें, तो साल भर पानी की पूर्ति के लिए हमें जलदाय विभाग के बिलों के भुगतान से निजात मिल सकती है। वहीं वर्षा जल संचयन को छोटे-छोटे माध्यमों में एकत्रित करके हम बाढ़ जैसे महाप्रलय से बच सकते हैं। इसके अतिरिक्त वर्षा जल का उपयोग भवन निर्माण, जल प्रदूषण को रोकने, सिंचाई करने, शौचालयों आदि कार्यों में बेहतर व सुलभ ढंग से किया जा सकता है जो हमारे लिए लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

वर्षा जल के संचयन के लिए वर्तमान में कई वैज्ञानिक एवं परंपरागत विधियाँ प्रयोग में लायी जा रही हैं। यहाँ कुछ ऐसी ही विधियों व प्रणाली का उल्लेख किया जा रहा है, जो वर्षा जल संगह में सहायता कर सकती हैं।

सतह जल संग्रह प्रणाली- धरती पर गिरने वाले पानी को भूतल में जाने से रोकने के लिए इस प्रणाली को उपयोग में लाया जाता है। इस प्रणाली के उदाहरणों में नदी, तालाब और कुऐं शामिल हैं। ड्रेनेज पाइप का उपयोग इन प्रणालियों में पानी के निर्देशन के लिए किया जा सकता है। इस तरह पानी को इन स्रोतों से प्राप्त करके अन्य प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

छत प्रणाली- यह वर्षा जल संग्रहण की सबसे उत्तम व आसान विधि है। इस विधि से संचित पानी को किसी अन्य माध्यम से स्वच्छ किये बिना ही इसका मानवहित में उपयोग किया जा सकता है। इसके जरिये छत पर गिरने वाले पानी को कंटेनरों या टैंकों में संग्रहित किया जाता है। इन टैंकों को आम तौर पर ऊँचा किया जाता है और जब टैप खोला जाता है, तब पानी उच्च दबाव में बह जाता है।

बाँध- वर्षा जल संचयन की यह विधि व्यक्तिगत तौर पर महंगी व सुलभ नहीं है, पर सार्वजनिक व सरकारी तौर पर बाँध परियोजनाओं का सफल निर्माण बारिश के जल को संग्रहित करने में काफी कारगर साबित हो सकता है। बाँध जैसे प्रकल्पों में जलराशि को लंबे समय तक बाँधकर इसका उपयोग नहरों के माध्यम से सिंचाई के प्रयोजनों के लिए किया जा सकता है। इसके लिए सरकार को बाँध निर्माण परियोजना पर भरसक जोर देना चाहिए।

भूमिगत टैंक- इस प्रणाली के तहत छत पर एकत्रित जल को पाइप के माध्यम से भूमि पर बनाये गये टैंक में संग्रहित किया जाता है। पानी बाहर निकालने के लिए पंपों का उपयोग किया जाता है। अंडरग्राउंड टैंक बारिश के पानी की कटाई के लिए बहुत अच्छे होते हैं, क्योंकि इनसे जल वाष्पीकरण की दर कम हो जाती है।

बारिशुसर- जिस प्रकार तौलिया जल को शीघ्र ही सोख देता है। उसी प्रकार विभिन्न छतरियों व उल्टे फनल को एक पाइप से जोड़कर वर्षा जल को एकत्रित किया जा सकता है। भारत की बढ़ती जनसंख्या के कारण जल की माँग में दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। आए दिन देश में जल की कमी के कारण होने वाली घटनाएँ हमारा ध्यान खींचती ही रहती हैं। अभी शिमला में हुए भीषण जल संकट का दुर्भाग्यपूर्ण उदाहरण हमारे सामने है।

अगर अब भी हम सचेत नहीं हुए तो दक्षिण अफ्रीकी शहर केपटाउन की तरह भारत को भी पानी सपने में ही देखने को नसीब होगा। अत: समय रहते हमें जल संरक्षण के लिए सचेत, सजग एवं सक्रिय हो जाना चाहिए। ताकि हमें भविष्य में जल संकट का सामना न करना पड़े।

यदि आप समय को, भगवान की इच्छा और भगवान की महानता को समझ लें तो ज्यादा अच्छा है। जैसे गिद्ध और गिलहरी ने समय को पहचान लिया था। उन्होंने अपनी हिमत दिखाई कि किस समय पर क्या करना चाहिए? उनमें हिमत थी, भावना थी और वे अजर-अमर हो गये। यह गिलहरी, गिद्ध वाला वक्त अब फिर से आ गया है। आप चाहें तो युग परिवर्तन की वेला में आगे वाली पंक्ति में चलने वाली सेना में अपना नाम लिखा सकते हैं।

-परमपूज्य गुरुदेव

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

परहित सरिस धरम नहिं भाई

भगवान शंकर को पति के रूप में पाने हेतु माता पार्वती कठोर तपस्या कर रही थीं। उनकी तपस्या पूर्णता की ओर थी। वे कभी बिल्वपत्र पर तो कभी निराहार रहकर भगवान भोलेनाथ की आराधना कर रही थीं। वे हमेशा अपने आराध्य के ध्यान में डूबी रहती थीं। ध्यान से बाहर आने के बाद भी उन्हें सृष्टि के कण-कण में अपने आराध्य की छवि ही दिखाई पड़ती थी। उनकी वर्षों की तप साधना पूर्णिमा की चन्द्रमा की भाँति पूर्णता की ओर बढ़ रही थी। वे भगवान के चिंतन में ध्यानमग्न बैठी थीं कि तभी उन्हें किसी बालक के चीखने की आवाज सुनाई पड़ी। बालक की चीख-पुकार सुनते ही वे उठ खड़ी हुईं और इधर-उधर देखने लगीं।

उन्होंने आगे जाकर देखा कि पास के ही सरोवर में एक बालक डूब रहा है और बचाने की गुहार लगा रहा है। माता तुरंत उठकर सरोवर के पास पहुँचीं। उन्होंने देखा कि एक मगरमच्छ बालक को पानी के भीतर खींच रहा है। बालक अपनी जान बचाने के लिए प्रयास कर रहा है, तथा मगरमच्छ उसे अपना आहार बनाने का प्रयास कर रहा है। करुणामयी माँ को बालक पर दया आ गई। उन्होंने मगरमच्छ से निवेदन किया कि वह बालक को छोड़ दे और उसे अपना आहार न बनाये।

मगरमच्छ बोला- माता! यह मेरा आहार है, मैं इसे नहीं छोड़ सकता। माता ने कहा- इसे छोड़ कर उदरपूर्ति हेतु कोई अन्य आहार ग्रहण कर ले। इसके बदले मैं अपनी तपस्या का फल दूँगी। ग्राह ने कहा-ठीक है। माता ने उसी समय संकल्प कर अपनी वर्षों की तपस्या का पुण्यफल उस ग्राह को दे दिया। तपस्या का पुण्यफल प्राप्त करते ही ग्राह चमक उठा, दैदीप्यमान हो उठा। उसकी बुद्धि भी शुद्ध हो गई। उसने कहा- माता! आप अपनी तपस्या का पुण्य वापस ले लें। मैं इस बालक को यूँ ही छोड़ दूँगा पर माता ने मना कर दिया तथा बालक को गोद में लेकर दुलारने लगीं। फिर बालक को सुरक्षित लौटाकर माता ने अपने स्थान पर वापस आकर पुनः तप करना शुरू कर दिया।

अभी वे अपने आराध्य के ध्यान में मग्न ही हुई थीं कि तभी भगवान शिव अपने परम तेजोमय ज्योतिर्मयरूप में वहाँ प्रकट हो गये और बोले- पार्वती! अब तुम्हें तप करने की आवश्यकता नहीं है। हर प्राणी में मेरा ही वास है, तुमने उस ग्राह को अपने तप का जो फल दिया वह मुझे ही प्राप्त हुआ। अतः तुम्हारा तपफल अनंत गुना हो गया। तुमने करुणावश द्रवित होकर किसी प्राणी की रक्षा की अतः मैं तुम पर प्रसन्न हूँ तथा तुम्हें अपनी अर्द्धांगिनी के रूप में स्वीकार करता हूँ।

प्रस्तुत कथा का सार यही है कि यदि तप, साधना- परसेवा, परोपकार से युक्त हो तो तप का फल अनंतगुना बढ़ जाता है। जो परहित की कामना करता है, उस पर परमात्मा की असीम कृपा होती है। जो व्यक्ति दूसरों की सेवा, सहायता करता है उसे परमेश्वर का कृपाप्रसाद अवश्य ही प्राप्त होता है। इस संबंध में मानसकार ने कितना सुन्दर कहा है-

परहित सरिस धरम नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

अर्थात् परोपकार से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है, परोपकार से उत्तम कोई कर्म नहीं है और दूसरों को पीड़ा देने के समान कोई पाप नहीं है। अठारह पुराणों के सार के रूप में महर्षि वेदव्यास ने भी सिर्फ दो ही बातें कही हैं-

अष्टादश पुराणानां सारं व्यासेन कीर्तितम्।
परोपकारः पुण्यया पापाय परपीड़नम्॥

अर्थात् कीर्तिस्वरूप अठारह पुराणों के सार के रूप में महर्षि व्यास ने सिर्फ दो बातें कही हैं। दूसरों का उपकार करने से पुण्य मिलता है और दूसरों को दुःख देने से पाप।

अतः साधकों को चाहिये कि वे तप-साधना के साथ-साथ पर-सेवा, पर-उपकार में निरत रहें। इससे चित्तशुद्धि की प्रक्रिया तीव्र होती है। मन पावन

व निर्मल होता है जिससे ईश्वर की कृपा अवश्य प्राप्त होती है। हमारी सेवा व सहयोग पाकर किसी व्यक्ति के चेहरे पर जो मुस्कान उभरती है उससे हमारी आत्मा भी असीम आनंद से भर जाती है। यह आनंद वास्तव में अवर्णनीय है। वास्तव में हमारी सेवा व सहयोग पाकर किसी का मुस्कुराना साक्षात् ईश्वर का ही मुस्कुराना है। उस आनंद की अनुभूति सिर्फ वही कर सकता है जो निःस्वार्थ भाव से सेवा, परोपकार में रत है, निरत है। इससे न सिर्फ हम अपनी 'स्व' की संकीर्ण दीवारों को तोड़ पाते हैं, बल्कि हमारा अनंत गुना आत्मविस्तार भी होता है। हमारा अपना जीवन भी, व्यक्तित्व भी महक उठता है, खिल उठता है।

नगर का नामी अमीर हजरत इब्राहिम के पास मिलने के लिए पहुँचा। मन में अपनी अमीरी का अहंकार था तो वह साथ में उपहार के रूप में बेशुमार हीरे-जवाहरात और अशर्फियों की थैलियाँ भी ले गया था। उन सबको वह हजरत के पैरों में डालकर उनसे उनके आशीर्वाद की याचना करने लगा। प्रत्युत्तर में हजरत बोले- यह सब हटा ले। मैं भिखारियों की लायी सौगात नहीं लेता।

हजरत इब्राहिम के इस वचन ने अमीर के अहंकार को चोट पहुँचायी। वह बोला- हुजूर! आपको शायद गलतफहमी हुई है। मैं भिखारी नहीं, बल्कि शहर का सबसे अमीर आदमी हूँ। हजरत इब्राहिम बोले- तू यदि अमीर है तो आशीर्वाद की याचना लेकर क्यों खड़ा है? वह अमीर बोला- आपका आशीर्वाद मिल जाए तो मैं देश का सबसे अमीर व्यापारी बन जाऊँ।

हजरत इब्राहिम ने कहा- जब तेरी हसरतों का ही ठिकाना नहीं है तो अपने को भिखारियों से जुदा क्यों मानता है? जब तक मन में कामनाऐं हैं, तब तक व्यक्ति याचक ही रहता है। अमीर को हजरत इब्राहिम का कहा समझ में आया और उसने उनसे प्रश्न किया- हुजूर! मन को कामनाओं से मुक्त कैसे किया जा सकता है? हजरत इब्राहिम बोले- अपने मन को परवरदिगार की शरण में लगा। जब मन कामनाओं से मुक्त होता है, तभी सच्ची अमीरी आती है। अनेकों लोग इसी तरह से अपना जीवन कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति की दौड़ में लगा देते हैं पर चाहत यह रखते हैं कि उनकी गणना संत, महापुरुषों में की जाए। ऐसा आडंबर सिर्फ मनुष्य को आत्मपतन की ओर ले जाता है, उत्थान की ओर नहीं।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

स्वयं को चुनौती देकर चुनौतियों का सामना करें

चुनौतियाँ जीवन का स्वाभाविक अंग हैं, ये हमारी सुप्त शक्तियों को झकझोर कर इनको जाग्रत करने आती हैं लेकिन यदि हम इनके लिए तैयार नहीं हैं, तो ये ही चुनौतियाँ हमारे लिए तनाव-अवसाद का भी कारण बन जाती हैं व जीवन को कष्टमय बना देती हैं। इसलिए जीवन में चुनौतियों के महत्त्व का अहसास महत्त्वपूर्ण हो जाता है, जिससे कि हम इनका साहस एवं धैर्य के साथ सामना कर सकें व इनको जीवन के उत्कर्ष की सीढ़ियाँ बना सकें।

वास्तव में चुनौतियाँ हमें बेहतर बनाने के लिए आती हैं, न कि हमें तोड़ने या जीवन में किसी तरह की कटुता को भरने के लिए लेकिन इनका परिणाम क्या निकलेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि हम इन्हें कैसे लेते हैं। हर चुनौतियों में कोई संदेश छुपा होता है, हम इसे कितना व किस रूप में ग्रहण करते हैं, इसके आधार पर तय होता कि ये हमें गढ़ेंगी या तोड़ेंगी। समझदारी साहस के साथ चुनौतियों का सामना करने, इनसे आवश्यक शिक्षा लेते हुए धैर्य के साथ इनसे पार होने में है, जिससे कि ये अभिशाप की बजाए जीवन का वरदान बन जाएं।

वस्तुतः चुनौतियों से हीन जीवन एक नीरस जीवन होता है। जब जीवन सुविधाओं एवं अनुकूलताओं से भरा रहता है तो जीवन में ठहराव सा आ जाता है, व्यक्तित्व में जैसे जंग लगने लगती है। जैसे ही हम चुनौतियों का सामना करते हैं, इस ठहराव की जड़ता टूटती है, जंग की परतें उतरने लगती हैं, जीवन का विकास प्रारम्भ हो जाता है। इसलिए चुनौतियों से घबराने या भागने की आवश्यकता नहीं, बल्कि इनको अपना शुभचिंतक मानते हुए इनका सामना करने की है।

अतः चुनौतियों को कम करने की बजाए अपनी सीमाओं को चुनौती देने वाले अवसरों को बढ़ाते रहना चाहिए। यदि हम स्वयं को चुनौती नहीं देंगे, तो कभी नहीं जान पाऐंगे कि हमारी क्षमताऐं क्या हैं, हम क्या कर सकते हैं क्योंकि चुनौतीपूर्ण क्षणों में ही हमारी वास्तविक क्षमताऐं प्रकट होती हैं। असंभव से लगने वाले कार्य अनायास ही सम्पन्न होने लगते हैं। ऐसे में स्वयं पर नया विश्वास जगता है और जीवन में विकास की नयी राहें खुल जाती हैं लेकिन होता यह तभी है, जब हम अपनी आलस्य-प्रमाद जैसी बुराईयों तथा पलायनवादी रुख को चुनौती देते हैं।

इसलिए हमें हर चुनौती को धन्यवाद देना चाहिए कि वह हमारे जीवन में आयी व हमें जीवन के कुछ अनमोल सबक दे गयी। हमारी कुंद पड़ती प्रतिभा में नयी धार आयी, इनके कारण हमारा व्यक्तित्व अधिक सशक्त हुआ व हमारे चरित्र में निखार आया। हमारे व्यक्तित्व की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता में वृद्धि हुई। किसी ने सही कहा है कि यदि जीवन में चुनौती नहीं आती तो इसमें सार्थक परिवर्तन भी नहीं होते। चुनौतियाँ ही जीवन को अर्थपूर्ण बनाती हैं। इनका सामना करने व इनको पार करने से संतुष्टि की गहरी अनुभूति मिलती है।

यह भी सच है कि प्रायः जब हमें चुनौती की कोई उम्मीद नहीं होती, तभी चुनौती हमारे साहस व तैयारी की परीक्षा के लिए आ खड़ी होती है। ऐसे में एक बार तो स्थिति विचलन एवं पलायन की बन जाती है, लेकिन थोड़ा होश संभालते ही, मन के संकल्प व साहस के जागते ही स्थिति बदलने लगती है। चुनौतियाँ हमें विकास का अवसर प्रतीत होने लगती हैं फिर लगता है कि हम कितने गलत थे कि जिन्हें हम अपने अस्तित्व के लिए खतरा मान रहे थे, वे ही परिस्थितियाँ जैसे वरदानों के पुष्प झोली में बरसा कर चली गयीं और फिर हमारा चुनौतियों के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगता है।

उस स्थिति में हमें लगता है कि चुनौतियाँ हमारे विकास के लिए, हमें प्रेरित रखने के लिए कितनी आवश्यक थीं। जितनी बड़ी चुनौती, उतना बड़ा विकास का अवसर। फिर हम एक योद्धा की भांति चुनौतियों का सामना ही नहीं करते, बल्कि उनका आह्वान करते हैं तथा इनके बीच अपने साहस, शौर्य, सूझ एवं धैर्य को

धार देने लगते हैं। फिर पूरा विश्व जैसे हमारे लिए एक अखाड़ा बन जाता है, जहाँ हम अपनी क्षमताओं, प्रतिभा एवं गुणों के विकास का अभ्यास करते हैं।

इसलिए हमें नित्य स्वयं को बदलने के लिए और बेहतर बनने के लिए अपने आलस्य, प्रमाद, दीर्घसूत्रता को चुनौती देते रहना चाहिए। जिस क्षण हम स्वयं को चुनौती देना बंद कर देते हैं, हमारी प्रगति रुक जाती है। ऐसे में बाहरी चुनौतियाँ हम पर हावी होने लगती हैं। जब हम इनके सामने घुटने टेक देते हैं, तो हमारे व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया कुंद पड़ जाती है। यदि हम स्वयं को चुनौती नहीं दे पाए तो कभी अहसास नहीं कर पाऐंगे कि हम क्या कर सकते थे या बन सकते थे। देखा जाए तो हमारे सबसे बड़े प्रतिद्वन्दी हम स्वयं ही हैं। रोज हमें स्वयं को चुनौती देनी चाहिए, अपने रिकॉर्ड तोड़ने चाहिए, अपनी सीमाओं के बाहर निकलकर विकास की अनन्त संभावनाओं के द्वार खटखटाने चाहिए।

जो चीज हमें सबसे अधिक चुनौती देती है, वह उतना अधिक हमें सीखा जाती है। अत: हम चुनौतियों से भागें नहीं, बल्कि इनका साहसपूर्वक सामना करें व संभावित चुनौतियों को तो पूरी तैयारी के साथ रौंदते हुए आगे बढ़ें। किसी ने सच ही कहा है कि एक शांत समन्दर में कभी कुशल नाविक तैयार नहीं हुए। वास्तव में हम झाँक कर देखें तो पाऐंगे कि आज हम जो कुछ भी हैं, वह पिछली चुनौतियों के कारण हैं। अत: चुनौतियों को अपना शुभचिंतक मानते हए हम पूरे साहस एवं समझबूझ के साथ इनका सामना करें व जीवन को सार्थक सफल बनाऐं।

एक बार देवर्षि नारद ने भगवान विष्णु से प्रश्न किया कि- हे भगवन! इस सृष्टि में आप तक पहुँचने के लिए अनेकानेक प्रणालियाँ वर्णित हैं पर ऐसा कोई सरल उपाय बताइए जिससे भक्तगण सहजता से आप तक पहुँच सकें एवं उनको इन गुह्य साधनापद्धतियों के जंजाल से गुजरने की कोई आवश्यकता न पड़े।

इसके उत्तर में भगवान विष्णु बोले-

नाहं वसामि बैकुण्ठे, योगिनां हृदये न वा।
मद् भक्ताः यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥

अर्थात् - हे नारद! न तो मैं बैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न ही योगियों के हृदय में। मैं तो वहाँ निवास करता हूँ जहाँ मेरे भक्तजन श्रद्धा भाव से मेरा चिंतन, मनन और कीर्त्तन करते हैं। भगवान विष्णु द्वारा दिए गए इस सूत्र में समस्त साधनात्मक प्रयासों का आधार सुरक्षित है। सत्य यही है कि भगवान तक पहुँचने का सबसे सरल उपाय निष्पाप हृदय से की गई प्रार्थनाएँ ही हैं। भक्त भगवान को न भी देख पाए तब भी त्रिलोकदर्शी भगवान अपने भक्तों का वैसे ही ध्यान रखते हैं जैसे कि धूल-धूसरित हो जाने पर भी माँ अपने बच्चे का रखती है। जो अपना सब कुछ भगवान को सौंप कर निश्चिंत हो जाते हैं, उसकी सारी चिंताओं का भार फिर स्वयं भगवान उठाते हैं।

औरों के लिए भी जीना सीखें

एक बार भगवान बुद्ध किसी गाँव में प्रवचन दे रहे थे। काफी दूर से लोग उनके प्रवचन सुनने को आये थे। उनके प्रवचन सुनकर लोगों को अपनी व्यक्तिगत व पारिवारिक समस्याओं का समाधान मिलता था। उनके प्रवचन सुनकर कई लोगों ने एक नई जीवनदृष्टि पाकर पवित्र जीवन जीने का संकल्प लिया था। कई लोग एक गाँव की गलियों से होकर बुद्ध के प्रवचन सुनने जा रहे थे।

गाँव की उसी गली में एक गरीब व्यक्ति अपनी छोटी-सी कुटिया में रहता था। वह बार-बार लोगों के झुंड को बुद्ध के प्रवचन सुनने की लालसा लिये अपनी कुटिया के पास से होकर जाते हुये देख रहा था। वह वहाँ से आते-जाते लोगों को बड़े ही गौर से देखा करता था। एक बार आते-जाते लोगों को देखकर उसके मन में यह प्रश्न आया कि भगवान बुद्ध के शिविर में जाते समय लोग उदास एवं परेशान दिखाई पड़ते हैं पर उनके प्रवचन सुनकर वापस आ रहे लोगों के चेहरे पर एक अजीब प्रसन्नता, आत्मविश्वास व शांति के भाव दिखाई पड़ते हैं मानों उन्हें कोई बड़ी दौलत और खुशी हाथ लग गई हो- आखिर ऐसा क्यों है ?

लोगों के इस प्रकार के भाव को देखकर एक दिन उस गरीब व्यक्ति ने भी भगवान बुद्ध से मिलने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन वह उस स्थल पर पहुँच गया जहाँ बुद्ध के प्रवचन चल रहे थे। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगवान बुद्ध के प्रवचन समाप्त हो चुके हैं और लोग अपनी समस्याओं व परेशानियों के समाधान को लेकर भगवान बुद्ध से मिल रहे हैं। भगवान बुद्ध बड़े ही शांत मन से उन सबकी बातें सुनकर उन्हें समाधान बता रहे थे। वह गरीब व्यक्ति भी अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब उसे भी भगवान बुद्ध से मिलने, उनका दर्शन करने और उनसे अपने मन की बातें कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

अंततः उस व्यक्ति की बारी आ गई। वह भी अब तथागत के सम्मुख खड़ा था। उन्हें नमन करते हुये वह व्यक्ति बोला-महात्मन्! ईश्वर ने सबको इतनी खुशियाँ दीं हैं, धन-धान्य दिया है, पर ईश्वर ने मुझे इतनी गरीबी और दु:ख-दर्द क्यों दिया है ? मैंने भला ऐसा कौन-सा पाप कर्म किया है जिसके कारण मैं गरीबी और दु:खों से भरा जीवन जीने के लिए विवश हूँ।

उस गरीब की बातें सुनकर, भगवान बुद्ध बड़े ही करुणा भरे भाव से बोले, वत्स! क्या तुमने कभी किसी को कुछ दिया है ? वह बड़े आश्चर्य से महात्मा बुद्ध की ओर देखा और बोला, प्रभु! भला मैं किसी को क्या दे सकता हूँ, मेरे पास किसी को देने को है ही क्या ? मैं तो स्वयं बड़ी मुश्किल से अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण कर पाता हूँ। कई बार तो हमारे पूरे परिवार को भूखे पेट ही सोना पड़ता है। ऐसे में मैं भला किसी को क्या दे सकता हूँ ?

यह सुनकर तथागत बोले-भगवान ने तुम्हें सुन्दर चेहरा दिया है, जिससे तुम लोगों को मुस्कुराहट दे सकते हो। भगवान ने तुम्हें मुख दिया है जिससे तुम लोगों की प्रसंशा कर सकते हो। भगवान ने तुम्हें दो हाथ दिये हैं, जिससे तुम लोगों की मदद कर सकते हो। जिसके पास ये तीन चीजें हैं वह भला गरीब कैसे हो सकता है ? तुम लोगों को देना सीख लो, उनकी मदद करना शुरू कर दो। अपनी मुस्कुराहट और प्रशंसा के शब्द लोगों में बाँटना शुरू कर दो। अपने दोनों हाथों से लोगों की जितनी मदद कर सकते हो, करना शुरू कर दो। फिर तुम कभी गरीब नहीं रहोगे। ये गरीबी और दरिद्रता हमेशा-हमेशा के लिये तुमसे दूर हो जायेगी। इस कर्म को अपने जीवन में उतारने वाला कभी भी गरीब नहीं रह सकता।

उस व्यक्ति को अब अपनी समस्या का समाधान मिल चुका था। उसे अपनी गरीबी और दु:ख के कारणों का पता चल चुका था। वह भी एक नये आत्मविश्वास व चेहरे पर एक अप्रतिम मुस्कुराहट व शांति लिये वहाँ से चल पड़ा। उस दिन से उसके जीवन की दिशाधारा बदल गयी। वह, वह नहीं रहा जो वह अभी-अभी बुद्ध से मिलने के कुछ पल पूर्व तक था। उसकी जीवनदृष्टि बदल चुकी थी और जीवन की दिशा भी। वह भी अब लोगों की सेवा में, सहायता में निरत रहने लगा। लोगों

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

को खुशी देकर वह भी प्रसन्न रहने लगा। कड़ी मेहनत व पुरुषार्थ के बल पर वह भी औरों की तरह समृद्ध व सुखी हो गया।

निश्चित ही हममें से हर कोई इसे अपने जीवन में अपनाकर अनंतगुना खुशियाँ पा सकता है। समृद्धि पा सकता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार दूसरों को देने से ही व्यक्ति के अंदर देवत्व की अभिवृद्धि होती है। जो दूसरों को देता है उसे प्रकृति उससे कई गुना अधिक वापस करती है। देने से ही हमारे अंदर देवत्व का जागरण होता है, जिससे हमारा स्वयं का जीवन भी महक उठता है, खिल उठता है। अध्यात्म का सार भी यही है कि हम स्वयं के लिये ही नहीं औरों के लिये भी जीना सीखें। स्वयं के लिये पशु–पक्षी व अन्य प्राणी भी जी लेते हैं पर मनुष्य विधाता की सर्वोत्कृष्ट कृति है, और हमें इस जगत में रहते हुये अपनी सर्वोत्कृष्टता का परिचय अपने आचरण से देना ही चाहिये।

एक बार भगवान बुद्ध किसी गाँव में प्रवचन दे रहे थे। काफी दूर से लोग उनके प्रवचन सुनने को आये थे। उनके प्रवचन सुनकर लोगों को अपनी व्यक्तिगत व पारिवारिक समस्याओं का समाधान मिलता था। उनके प्रवचन सुनकर कई लोगों ने एक नई जीवनदृष्टि पाकर पवित्र जीवन जीने का संकल्प लिया था। कई लोग एक गाँव की गलियों से होकर बुद्ध के प्रवचन सुनने जा रहे थे।

गाँव की उसी गली में एक गरीब व्यक्ति अपनी छोटी-सी कुटिया में रहता था। वह बार-बार लोगों के झुंड को बुद्ध के प्रवचन सुनने की लालसा लिये अपनी कुटिया के पास से होकर जाते हुये देख रहा था। वह वहाँ से आते-जाते लोगों को बड़े ही गौर से देखा करता था। एक बार आते-जाते लोगों को देखकर उसके मन में यह प्रश्न आया कि भगवान बुद्ध के शिविर में जाते समय लोग उदास एवं परेशान दिखाई पड़ते हैं पर उनके प्रवचन सुनकर वापस आ रहे लोगों के चेहरे पर एक अजीब प्रसन्नता, आत्मविश्वास व शांति के भाव दिखाई पड़ते हैं मानों उन्हें कोई बड़ी दौलत और खुशी हाथ लग गई हो- आखिर ऐसा क्यों है?

लोगों के इस प्रकार के भाव को देखकर एक दिन उस गरीब व्यक्ति ने भी भगवान बुद्ध से मिलने का निश्चय किया। दूसरे ही दिन वह उस स्थल पर पहुँच गया जहाँ बुद्ध के प्रवचन चल रहे थे। वहाँ जाकर उसने देखा कि भगवान बुद्ध के प्रवचन समाप्त हो चुके हैं और लोग अपनी समस्याओं व परेशानियों के समाधान को लेकर भगवान बुद्ध से मिल रहे हैं। भगवान बुद्ध बड़े ही शांत मन से उन सबकी बातें सुनकर उन्हें समाधान बता रहे थे। वह गरीब व्यक्ति भी अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब उसे भी भगवान बुद्ध से मिलने, उनका दर्शन करने और उनसे अपने मन की बातें कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

अंततः उस व्यक्ति की बारी आ गई। वह भी अब तथागत के समुख खड़ा था। उन्हें नमन करते हुये वह व्यक्ति बोला-महात्मन्! ईश्वर ने सबको इतनी खुशियाँ दीं हैं, धन-धान्य दिया है, पर ईश्वर ने मुझे इतनी गरीबी और दुःख-दर्द क्यों दिया है? मैंने भला ऐसा कौन-सा पाप कर्म किया है जिसके कारण मैं गरीबी और दुःखों से भरा जीवन जीने के लिए विवश हूँ।

उस गरीब की बातें सुनकर, भगवान बुद्ध बड़े ही करुणा भरे भाव से बोले, वत्स! क्या तुमने कभी किसी को कुछ दिया है? वह बड़े आश्चर्य से महात्मा बुद्ध की ओर देखा और बोला, प्रभु! भला मैं किसी को क्या दे सकता हूँ, मेरे पास किसी को देने को है ही क्या? मैं तो स्वयं बड़ी मुश्किल से अपना व अपने परिवार का भरण-पोषण कर पाता हूँ। कई बार तो हमारे पूरे परिवार को भूखे पेट ही सोना पड़ता है। ऐसे में मैं भला किसी को क्या दे सकता हूँ?

यह सुनकर तथागत बोले-भगवान ने तुहें सुन्दर चेहरा दिया है, जिससे तुम लोगों को मुस्कुराहट दे सकते हो। भगवान ने तुहें मुख दिया है जिससे तुम लोगों की प्रसंशा कर सकते हो। भगवान ने तुहें दो हाथ दिये हैं, जिससे तुम लोगों की मदद कर सकते हो। जिसके पास ये तीन चीजें हैं वह भला गरीब कैसे हो सकता है? तुम लोगों को देना सीख लो, उनकी मदद करना शुरू कर दो। अपनी मुस्कुराहट और प्रशंसा के शब्द लोगों में बाँटना शुरू कर दो। अपने दोनों हाथों से लोगों की जितनी मदद कर सकते हो, करना शुरू कर दो। फिर तुम कभी गरीब नहीं रहोगे। ये गरीबी और दरिद्रता हमेशा-हमेशा के लिये तुमसे दूर हो जायेगी। इस कर्म को अपने जीवन में उतारने वाला कभी भी गरीब नहीं रह सकता।

उस व्यक्ति को अब अपनी समस्या का समाधान मिल चुका था। उसे अपनी गरीबी और दुःख के कारणों का पता चल चुका था। वह भी एक नये आत्मविश्वास व चेहरे पर एक अप्रतिम मुस्कुराहट व शांति लिये वहाँ से चल पड़ा। उस दिन से उसके जीवन की दिशाधारा बदल गयी। वह, वह नहीं रहा जो वह अभी-अभी बुद्ध से मिलने के कुछ पल पूर्व तक था। उसकी जीवनदृष्टि बदल चुकी थी और जीवन की दिशा भी। वह भी अब लोगों की सेवा में, सहायता में निरत रहने लगा। लोगों को खुशी देकर वह भी प्रसन्न रहने लगा। कड़ी मेहनत व पुरुषार्थ के बल पर वह भी औरों की तरह समृद्ध व सुखी हो गया।

निश्चित ही हममें से हर कोई इसे अपने जीवन में अपनाकर अनंतगुना खुशियाँ पा सकता है। समृद्धि पा सकता है। युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के अनुसार दूसरों को देने से ही व्यक्ति के अंदर देवत्व की अभिवृद्धि होती है। जो दूसरों को देता है उसे प्रकृति उससे कई गुना अधिक वापस करती है। देने से ही हमारे अंदर देवत्व का जागरण होता है, जिससे हमारा स्वयं का जीवन भी महक उठता है, खिल उठता है। अध्यात्म का सार भी यही है कि हम स्वयं के लिये ही नहीं औरों के लिये भी जीना सीखें। स्वयं के लिये पशु-पक्षी व अन्य प्राणी भी जी लेते हैं पर मनुष्य विधाता की सर्वोत्कृष्ट कृति है, और हमें इस जगत में रहते हुये अपनी सर्वोत्कृष्टता का परिचय अपने आचरण से देना ही चाहिये।

पीड़ितों की सेवा से बड़ा धर्मोपदेश कुछ भी नहीं

प्रभात की बेला में सूर्यदेव की स्वर्णिम रश्मियाँ हल्की ऊष्मा लिये निशा के गहराए तमस को चीरतीं, जगत की चेतना को आलोकित करती चली जा रही थीं। प्रकृति के जागरण की यह कोई प्रथम घटना न थी। दिन-रात के फेरबदल में शयन-जागरण की अवस्था नित ही घटित होती थी किंतु सृष्टि की इस नियत सनातन परंपरा में न जाने ऐसी कौन-सी विलक्षणता विद्यमान थी जो इस नियमित उपक्रम में भी सदैव नवीनता लिए उपस्थित होती थी।

आज नूतनता के साक्षी प्रशांत अवस्थित भगवान बुद्ध प्रात:कालीन शिक्षणसत्र में परिव्राजकों को संबोधित करते हुए कहने लगे- 'मनुष्ययोनि की विशिष्टता यह है कि जागरण की जीवंत संभावनाएँ जिस अनुपात में उसमें मौजूद होती हैं उतनी किसी अन्य योनि में नहीं। किंतु संसारिकता के श्रृंगार में वह न केवल अपनी वास्तविकता से अनभिज्ञ हो जाता है बल्कि प्रस्तुत दृश्य को ही अपना लक्ष्य मान बैठता है। यही भूल जहाँ श्रेष्ठता की वैयक्तिक संभावनाओं में अवरोध उत्पन्न करती है तो वहीं समष्टि चेतना की उत्कृष्टता को भी प्रभावित करती है।'

बुद्ध आगे कहने लगे- 'सामयिक परिपेक्ष्य में जागृति के ये संदेश ही एकमात्र संजीवनी हैं जो मनुष्य को न केवल मानव जीवन की गरिमा से परिचित करा सकते हैं वरन् उसे सार्थकता अर्जित करने का सुअवसर भी हस्तगत कराने की सामर्थ्य रखते हैं। इसीलिए तुममें से प्रत्येक का लक्ष्य- स्वयं प्रकाशित होने व साथ ही औरों को उस प्रकाश से लाभान्वित करने का होना चाहिए। वैयक्तिक स्तर को ही प्रकाशित करना पर्याप्त नहीं। ऐसा यत्न सराहनीय अवश्य है किन्तु संपूर्ण नहीं। तथ्य यह है कि सामूहिक अशांति के बीच व्यक्तिगत शांति कब तक कायम रह सकती है?'

बुद्ध का संकेत स्पष्ट था। आज वे मानवीय प्रगति के उच्च-सोपानों की सरल व्याख्या अपने अनुयाईयों के समक्ष प्रकट कर रहे थे। बुद्धं शरणम् गच्छामि ; धम्मम् शरणम् गच्छामि ; संघम शरणम् गच्छामि का मर्म उपस्थित भिक्षुओं को आज भलीभाँति समझ आया था। राजकुमार सिद्धार्थ से गौतम बुद्ध तक की प्रगतिशील यात्रा किसी से छिपी न थी। जो विकासक्रम में आज समष्टि में बुधत्व के अवतरण हेतु संकल्पित थी।

धर्मप्रचार के लिए जाने को तैयार परिव्राजकों से व्यक्तिगत भेंट के क्रम में बुद्ध ने कलम्भन को विदा करते समय कहा- 'वत्स! लोग अज्ञानतावश कुरीतियों में जकड़े पड़े हैं। जाओ, उन्हें जागृति का संदेश दो। इससे बढ़कर और कोई पुण्य नहीं।' कलम्भन ने वहाँ से विदा ली।

कुछ दूर की यात्रा के उपरांत कलम्भन प्रकृति के नैसर्गिक वातावरण से होते सामान्य आबादी के एक गाँव में पहुँचे। इस गाँव के परिकर का दृश्य मनोरम था किन्तु भीतर जाने पर वस्तुस्थिति कुछ और ही निकली। वहाँ रह रहे कई लोग बीमार पड़े थे। बच्चों के शरीर सूखे हुए थे। उन्हें न भरपेट अन्न मिलता था और न ही औषधियाँ। शिक्षा की दृष्टि से उनमें कोई चेतना दिखाई नहीं दे रही थी। वन्यक्षेत्र की निकटता से गाँव का परिक्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता से आपूरित था किन्तु समृद्ध जीवन हेतु संसाधनों की उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं होती, वरन् साथ ही उनके सदुपयोग की समझ व सुनियोजन की सूझबूझ भी आवश्यक होती है जिसका अभाव कलम्भन ने वहाँ गाँववालों में पाया।

कलम्भन को उपदेश देने का उपयुक्त स्थान मिल गया। ग्रामीणों ने कलम्भन के विश्राम की समुचित व्यवस्था कर दी। रात बड़ी शांति और प्रसन्नता में बीती। सुबह के समय बौद्ध भिक्षु जब तक ध्यान-पूजन समाप्त करें, तब तक द्वार ग्रामवासियों की भीड़ से भर गया। कलम्भन अपने दैनिक उपक्रमों का संक्षिप्त निस्तारण कर बाहर निकले, पर गाँववालों के मलिन चेहरे देखते ही मन में घृणा फैल गई, लेकिन उन्होंने गाँववालों के समक्ष कोई प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की।

गाँव में मध्य स्थित एक विशाल वटवृक्ष के निकट सबको बैठाकर कलम्भन ने उपदेश प्रारंभ किया। कलम्भन का उपदेश समाप्त हुआ परन्तु ग्रामीणों की

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

समझ में न धर्म आया, न बुद्ध और न ही संघ। वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट गए।

कलम्भन ने आसपास के क्षेत्रों में भी कई सभाएँ कीं जिसमें ग्रामीणों ने अपने समाधान की आस में प्रतिभाग किया किन्तु ग्रामीणों की न निराशा दूर हुई, न दरिद्रता। कलम्भन ग्रामीणों के मुखमंडल पर यथावत विराजते नैराश्य के भाव को देख हताश हो तथागत के पास लौट गए और निवेदनस्वरूप कहने लगे– 'प्रभु! उपदेश कुछ काम नहीं आया। कृपया मार्गदर्शन करें।'

बुद्ध ने वहाँ उपस्थित आचार्य जीवन और शिष्य सनातन को बुलाकर कहा– 'उस गाँव में औषधि और शिक्षा का प्रबंध करो।' सनातन और आचार्य जीवन वहाँ से चल पड़े। कलम्भन यह कुछ देख हतप्रभ थे। बुद्ध के आदेश के अगले ही क्षण प्रार्थना की मुद्रा में कलम्भन ने पूछा– 'भगवन! गाँववालों पर उपदेशों का कोई प्रभाव न होते देख स्वयं के आचरण पर संदेह हो उठा था किन्तु अब आपका यह अग्रिम आदेश कुछ समझ नहीं आ पा रहा है। आपने इन्हें धर्म उपदेश के लिए तो कहा ही नहीं।'

तथागत कलम्भन को निहारते व मुस्कुराते हुए बोले– 'सौम्य! मोक्ष के लक्ष्य के लिए जीव द्वारा की जाने वाली यात्रा अनंतकाल तक चलने वाली यात्रा है; जिस हेतु परिष्कार का राजमार्ग अपनाना अनिवार्य होता है। यात्रा का समय जीव की उन्नत अवस्था पर निर्भर करता है। परिष्कार की प्रक्रिया में विभिन्न पड़ावों को पार करना होता है। वर्तमान में ग्रामीणों की आवश्यकता शिक्षा है, स्वास्थ्य है, यही उनके लिए कुरीतियों के जंजाल से मुक्ति है। अभी उन्हें जीवन की आशा चाहिए। आज जियेंगे, तो कल सुनेंगे भी।'

कलम्भन ने बुद्ध के उपदेश का न केवल अर्थ समझा वरन उसे अब आत्मसात होता हुआ भी पाया एवं कृतज्ञभाव से बुद्ध को प्रणाम करते हुए परिव्रज्या के लिए अन्यत्र क्षेत्र को निकल पड़े।

समुद्र गरम होने लगा तो डरी-सहमी जल की बूँदें सूर्य भगवान के पास जाकर कहने लगीं, 'भगवन्! हमें कष्ट क्यों देते हो? हमने तुहारा क्या बिगाड़ा है?' भगवान सूर्य ने बहुतेरा समझाया, 'बूँदों तुम आकाश में उड़ोगी। जहाँ बरसोगी वहीं हरियाली फूटेगी और संसार को प्रसन्नता मिलेगी।' पर बूँदों को यह उपदेश अज्छा नहीं लगा। वे भगवान सूर्य को गालियाँ ही देती रहीं। समुद्र ने जल की बूँदों को आकाश में फेंक दिया फिर वे धरती पर गिरीं और बहते-बहते फिर समुद्र में जा पहुँचीं। तब उन्हें पता चला कि हम तो व्यर्थ ही डरते रहे, हमारा तो कुछ भी नही बिगड़ा। इतने सुंदर दृश्य देखने को मिले और विश्व भ्रमण का सौभाग्य मिला सो अलग।

उधर स्वाति नक्षत्र आ गया, तो बूँदें एक बार फिर उमड़ीं, इस बार उन्हें न भय था, न उद्वेग। हँसती-खिलखिलाती बूँदें आकाश से झरने लगीं, कोई बाँस में गिरी तो वंशलोचन बन गई, कोई केले में गिरी तो कपूर बन गई और कोई सीप में गिरी तो मोती बन गई। बूँदें अपने सौभाग्य पर प्रसन्न हो रही थीं। तब भगवान सूर्य विचार कर रहे थे कि यदि मनुष्य भी संकट की परिस्थितियों से विचलित न होता तो आज वह भी बूँदों के समान वशंलोचन, कपूर और मोती सदृश्य बन गया होता।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

जहाँ से भी मिले, लें सत्संग का सहारा

कहावत है कि एक व्यक्ति की पहचान उसकी संगत से होती है। वह जैसी संगत में रहता है, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में उससे प्रभावित होता है और वैसा ही बनता जाता है। ऐसे में गलत लोगों की संगत व्यक्ति को गलत मार्ग पर ले जाती है। किशोरावस्था में शराब, नशा, चोरी, कुटैब, हिंसा, अपराध जैसी गलत राहों में भटक रहे व्यक्ति अधिकाँशतः संगत के प्रभाव में ही ऐसा करते देखे जाते हैं। इसी तरह जिन्हें सही संग-साथ मिल जाता है, वे जीवन में श्रेष्ठ मार्ग पर बढ़ चलते हैं, महानता के पथ पर अग्रसर होते हैं। अच्छी संगत में तो बिगड़े से बिगड़े लोग तक सुधरते देखे जाते हैं। कितने ऐतिहासिक उदाहरण इसके साक्षी हैं।

अच्छे लोगों की संगत में डाकू एक ऋषि बन जाते हैं। सप्तऋषिओं का कुछ पल का सत्संग इतने गहरे अंकित हो जाता है कि डाकू कर्म छोड़कर ऋषि बन जाते हैं। इसी तरह डाकू अंगुलिमाल की महात्मा बुद्ध के सत्संग में महात्मा बनने की कहानी प्रख्यात है। बुद्ध भगवान की संगत में नर्तकी-वेश्या आम्रपाली का उद्धार हो जाता है। महाभारत में भगवान श्रीकृष्ण का संग अर्जुन के मोह को भंग करता है, विषाद से उबारता है और रणक्षेत्र में एक विजयी योद्धा के रूप में यशस्वी बनाता है। वहीं भीष्म पितामह, गुरु द्रोणाचार्य, कर्ण जैसे योद्धा गलत संगत के कारण अपयश के भागी बनते हैं।

इसी तरह स्वाति नक्षत्र में जल की एक बूँद की नियति संग के आधार पर भिन्न-भिन्न तय होती है। केले में पड़ने पर वह कपूर बन जाती है, तो सीप में गिरने पर मोती और साँप के मुंह में विष बन जाती है। इसी तरह पारस का स्पर्श लोहे को सोना बना देता है। छोटी नदी या नाला गंगाजी में मिलकर गंगास्वरूप ही हो जाता है और नदियाँ सागर में मिलने पर सागर ही बन जाती हैं। इस तरह संग की महिमा अपरम्पार है। यदि संग महापुरुषों, सत्पुरुषों का हो जाए तो वह सत्संग बन जाता है, जो सात्विक आहार के रूप में बुद्धि के साथ आत्मा का पोषण करता है। यह आहार सात्विक, पौष्टिक एवं बलबर्धक हो, इसके लिए आवश्यक है कि हमेशा अच्छे, श्रेष्ठ, नेक एवं सज्जन लोगों का साथ करें। सत्संग बुरे रास्ते से सचेत करता है, सही मार्ग पर प्रवृत्त करता है। सच कहें तो सत्संग उस पतवार की तरह है, जो जीवन के भंवर एवं तूफानों के बीच व्यक्ति को सुरक्षित पार लगा देता है।

जैसी संगत वैसे विचार, जैसे विचार वैसे कर्म एवं संस्कार बनते जाते हैं। इस तरह संगत से व्यक्ति की नियति एवं भविष्य तक का निर्धारण हो जाता है। इसीलिए भारत की देव संस्कृति में बचपन से ही संस्कारों की परम्परा रही है, जिसके अंतर्गत जीवन के हर निर्णायक मोड़ पर सत्संग के दिव्य वातावरण में श्रेष्ठ विचार-बीजों का आरोपण किया जाता था तथा पूर्व में आरोपित कुसंस्कारों के परिमार्जन की उत्तम व्यवस्था रहती थी। इस तरह व्यक्तित्व के आंतरिक परिष्कार के साथ पूरा जीवन चरम लक्ष्य की ओर गतिशील रहता था।

वस्तुतः सत्संग की महिमा अपरम्पार है। सत्संग में सत् अर्थात सत्य, श्रेष्ठ, उत्तम तथा संग अर्थात् साहचर्य, सान्निध्य का अर्थ रखते हैं। इस तरह सत्संग श्रेष्ठ व्यक्तियों का सान्निध्य या साहचर्य है, जिसके आलोक में जीवन की श्रेष्ठ दिशा तय होती है। सत्संग से विवेक पैदा होता है, जो स्वधर्म, कर्तव्यनिष्ठा, धर्मभावना एवं सदाचार को संभव बनाता है। साथ ही सत्संग से चित्त की शुद्धि होती है, मन स्वच्छ होता है, कलुषित बुद्धि निर्मल होती है तथा चारित्रिक दोषों का परिमार्जन होता है।

भर्तृहरि ने नीतिशतक में सत्संग पर कहा है कि यह बुद्धि की जड़ता को दूर करता है, वाणी में सत्य का संचार करता है, सम्मान को बढ़ाता है, पापों का क्षय करता है, मन को प्रसन्न करता है तथा यश को बढ़ाकर चारों ओर फैलाता है; कहो सत्संग क्या नहीं करता अर्थात् सब कुछ करता है। यह नर को नारायण बनाने का अवसर देता है।

आज के मोबाईल, इंटरनेट के युग में जब सोशल मीडिया एवं फिल्में घर-घर पहुँच गई हैं, बच्चों, किशोरों एवं युवाओं तक सहज रूप में उपलब्ध हैं, ऐसे में सत्संग का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। क्योंकि नए माध्यम में मन को बहकाने बाले, विचारों को कलुषित करने वाले दृश्यों, नकारात्मक विचारों एवं विकृत भावों की भरमार है, जिनके कारण पूरा वातावरण विषाक्त हो चला है। ऐसे में सत्संग का महत्त्व पहले से कई गुना बढ़ जाता है।

व्यक्ति को प्रभावित करने वाला संग-साथ जैसे मात्र व्यक्ति तक सीमित नहीं, ऐसे ही सत्संग भी सामयिक संदर्भों में व्यक्ति तक सीमित नहीं माना जा सकता। चलते-फिरते राह के पोस्टर, फिल्मों के दृश्य, मोबाईल में चल रहे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म जब व्यक्ति के विचारों को दिन-रात प्रभावित कर रहे हों, तो ऐसे में इनके नकारात्मक प्रभाव को निरस्त करने वाले सत्संग का दायरा भी व्यापक हो जाता है। यदि श्रेष्ठ व्यक्ति प्रत्यक्ष नहीं तो उसकी लिखी पुस्तकों के स्वाध्याय को सत्संग का रूप माना जा सकता है। उसके रिकॉर्ड किए गए प्रवचनों, प्रेरक उद्बोधनों को इसमें शामिल कर सकते हैं। दीवारों पर लिखे श्रेष्ठ-प्रेरक वाक्य एवं टंगे महापुरुषों के चित्र इस दिशा में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। सोशल मीडिया के हर प्लेटफॉर्म पर इनकी सशक्त उपस्थिति है। हम दिनचर्या में इनके स्वाध्याय-परायण को शामिल कर सत्संग का लाभ उठा सकते हैं, जिसके आलोक में जाग्रत विवेक के सहारे हम अपने दैनिक जीवन को सार्थक-सफल दिशा की ओर गतिशील कर सकते हैं।

सिक्ख संप्रदाय के चौथे गुरु श्री रामदास जी के अनेक शिष्य थे। सभी की अपनी-अपनी विशेषतायें थीं। उन्हीं शिष्यों में से एक थे- गुरु अर्जुन देव। अर्जुन देव ने गुरु से दीक्षा लेकर आश्रम में प्रवेश किया तो उन्हें बर्तन माँजने का काम सौंपा गया। वे सबेरे से शाम तक बर्तन माँजते या आश्रम के अन्य कार्य करते। अन्य शिष्य धर्मचर्चा और गुरुपूजा में लगे रहते तो भी अर्जुनदेव गुरु के आदेशानुसार अपने नियत कर्म में लगे रहते।

गुरु के अवसान का समय आया। गुरु अपना घोषणापत्र लिखकर गये थे। सभी अपनी बड़ी-बड़ी योग्यताओं के कारण सोचते थे कि उन्हें ही उत्तराधिकार मिलेगा परन्तु घोषणापत्र खुलने पर उसमें अर्जुनदेव को उत्तराधिकारी माना गया। सुनने वालों ने आश्चर्य किया कि इस सबसे कम योग्यता वाले व्यक्ति को यह पद कैसे मिला? समाधान करने वालों ने समझाया कि सेवा, श्रद्धा और अनुशासन यही शिष्य की सबसे बड़ी योग्यता है। अर्जुनदेव सिक्ख धर्म के पाँचवें गुरु हुए और उन्होंने अपनी श्रद्धा के बल पर सिक्ख धर्म की महती सेवा की।

अवतार प्रक्रिया का रहस्य

विगत अंक में आपने पढ़ा कि आंध्रप्रदेश स्थित नलगोड़ा गाँव में एक परिवार सुखद रूप से जीवनयापन कर रहा था। परिवार के गृहस्वामी अनिल नायडू परिवार का भरण-पोषण खेती-बाड़ी तथा किसी ट्रैवल एजेंसी में कार्य करते थे किन्तु लोभ के वशीभूत अनिल ने अपनी आय में त्वरित बढ़ोत्तरी की इच्छा से जमीन-जायदाद का नया व्यवसाय एक अतिरिक्त भागीदार के साथ संयुक्त ढंग से आरंभ किया। समय बीतने के साथ एक रोज किसी अप्रत्याशित कारण से पति अनिल के लापता हो जाने पर पत्नी दामिनी अत्यंत व्याकुल हो उठी। पति का पता लगाने के उद्देश्य से सगे-संबंधियों से पूछताछ व विभिन्न तीर्थ, मंदिर एवं सिद्ध-स्थलों की यात्रा इत्यादि में की गयी दीघकालीन प्रतीक्षा के उपरांत भी जब निराशा हाथ लगेगी तो उसने अंत में प्रसिद्ध ज्योतिष विशेषज्ञ पंडित वेंकट शास्त्री के निर्देशानुसार अपनी समस्या के समुचित समाधान मिल जाने के आश्वासन से उत्तर दिशा की ओर जाने की तैयारी की। पति की खोज में अनायास शांतिकुंज आने का संयोग बना, जहाँ पूज्य गुरुदेव एवं वन्दनीया माताजी को दर्शन-प्रणाम करके लापता पति के जल्द वापिस मिल जाने का स्पष्ट आश्वासन मिला। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण.........

दामिनी थोड़ी सहज हुई तो पति को लेकर कार्यालय में गई। वहाँ उपस्थित प्रभारी कार्यकर्त्ता से अपने पति का परिचय कराया और गुरुदेव से मिलने का अनुरोध किया। यह भी कि अनुमति मिल जाए तो दोनों साथ ही गुरुदेव को प्रणाम करने जाएंगे। कार्यकर्त्ता ने यह सब नोट कर लिया और अनिल को अतिथि कक्ष में ठहरा दिया। दोपहर बाद का समय मिला। दोनों गुरुदेव से मिलने गए। दामिनी ने कल से घटी घटनाओं का ब्यौरा दिया और गुरुदेव के आशीर्वाद के प्रति कृतकृत्य होने लगी। अनिल ने अपनी गलती के लिए पश्चाताप जताया और दामिनी को हुए कष्ट के लिए गुरुदेव से माफी मांगी। गुरुदेव ने कहा, 'अब बच्चों का अच्छी तरह ध्यान रखना। मेहनत, ईमानदारी और धीरज से काम करना। जल्दी से धनवान बनने की होड़ में मत पड़ना।'

गुरुदेव की बात सुनकर अनिल का उत्साह बढ़ा। पश्चाताप, भूल सुधार और नया कुछ करने की उमंग उठने लगी। उसने कहा कि आपके आशीर्वाद से हम नई जिन्दगी शुरु करने जा रहे हैं गुरुदेव! हमें कोई आशीर्वाद दीजिए। हम और क्या करें? गुरुदेव ने कहा 'भगवान का काम करो बस। सब ठीक होगा। और हां याद रखो अधीर मत होना, अधीरता और उतावली के कारण ही राजा नल जैसे साधुपुरुष को अपना राजपाट खोना पड़ा था। पांसों या पत्तों से खेलना ही जुआ नहीं है, जल्दबाजी और बिना सोचे समझे दांव पर लगाने वाला हर कृत्य जुआ है। इससे बचना। तुम लोग खुश रहोगे।'

अनिल और दामिनी गुरुदेव को प्रणाम कर नीचे लौटे। कार्यालय में प्रबंधक स्वयंसेवक को उन्होंने अपना अनुभव बताया। उस समय कार्यालय में कुछ और कार्यकर्त्ता भी थे। दो एक शिविरार्थी भी। किसी शिविरार्थी ने कहा यह तो महाभारत काल में नल दमयन्ती की सी घटना हो गई। राजा नल भी तो जुआ खेलकर अपना राज पाट हार चुके थे। फिर दमयंती समेत परिवार और राज्य छोड़कर चले गये थे। जुआ है क्या आखिर। जल्दी से अमीर बनने की उतावली में उठाया गया कदम ही तो है न?

शिविरार्थी की बात सुनकर अनिल के अंतस में और गदगद अनुभूति हुई। लगा उसके प्रकाश का संसार और फैल गया है। कुछ पल के लिए वह अपने आपको नल और पत्नी को दमयन्ती के रूप में देखने लगा। उन्हीं शिविरार्थी ने कहा, रामायण, महाभारत और इतिहास पुराण

के पात्र वास्तविक दुनिया मे जब हुए तब हुए होंगे, हमारे जीवन और व्यक्तित्व में तो वे हमेशा ही बसते हैं। सुनकर अनिल को लगा कि उसके सम्बन्ध में यह बात शत प्रतिशत चरितार्थ हुई है। उसने और दामिनी ने सचमुच नल दमयंती का जीवन जिया है।

युगों का मर्म

स्वामी श्री युक्तेश्वर गिरि के शिष्य जगदीश मुनि भी उन दिनों शान्तिकुञ्ज आये थे। प्रसिद्ध योगी श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य और जगदीश मुनि के गुरु श्री युक्तेश्वर गिरि की विभूतियों के बारे में बहुतों को पता होगा। योग, और हिमालय के गुह्य क्षेत्रों में तपश्चर्या कर रहे दिव्य योगियों के संपर्क में रहने वाले श्री युक्तेश्वर गिरि का एक और अवदान भी महत्त्वपूर्ण है। उस अवदान की ज्यादा चर्चा नहीं हुई पर श्री युक्तेश्वर गिरि की इस स्थापना से युगों के सम्बन्ध में प्रचलित धारणा में आमूलचूल परिवर्तन आए हैं। परम्परावादी विद्वानों ने उनकी धारणा को अब भी स्वीकार नहीं किया है। जबकि पिछले पांच हजार साल की ऐतिहासिक घटनाओं से उनकी स्थापनाऐं सही साबित हुई हैं।

श्री युक्तेश्वर गिरि क्रिया योग के प्रवर्तक और प्रचारक स्वामी योगानन्द परमहंस के गुरु भी रहे हैं। ज्यादा लोग उन्हें इसी रूप में जानते हैं लेकिन ज्योतिष और काल मीमांसा उनके व्यक्तित्व का अविज्ञात या बहुत कम सामने आया पक्ष है। श्री युक्तेश्वर गिरि ने युगों की मीमांसा करते हुए लिखा है कि सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग की अवधि लाखों करोड़ों वर्ष नहीं होती। पौराणिक ग्रंथों में जहाँ भी इस अवधि का उल्लेख आया, वह प्रतीकात्मक है। यदि उस विभाजन और उसके अनुसार समय समाज की प्रवृत्तियों को यथावत न लें तो संसार चक्र मशीन की तरह हो जाए। मनुष्य के वश में कुछ रह ही नहीं जाएगा। उस हालत में वह काल और नियति से प्रेरित होकर ही अपना निजी और सामाजिक जीवन जियेगा।

जगदीश मुनि ने अपने गुरु की प्रणीत काल मीमांसा का परिचय देते हुए शिविरार्थियों से कहा कि चारों युगों में कुछ खास प्रवृत्तियों की प्रधानता रहती है और कुछ प्रवृत्तियाँ क्षीण हो जाती हैं लेकिन वह अवधि हजारों वर्ष की नहीं होती। उनके गुरु के अनुसार चारों युगों की अवधि बारह-बारह हजार वर्ष के चक्रों में निर्धारित है। बारह हजार वर्ष के चार युगों में सतयुग के चार हजार, त्रेता के तीन हजार, द्वापर के दो हजार और कलियुग के एक हजार वर्ष होते हैं। दो युगों के बीच उस अवधि का दसवां हिस्सा संधिकाल कहलाता है। दस प्रतिशत आरंभ में और दस प्रतिशत अंत के संधिकाल को मिलाकर पूरा चक्र बारह हजार वर्षों का बनता है। पुराणों में भी मूल रूप में युगों का विभाजन इसी क्रम से हुआ है। इस संख्या या वर्षों को दिव्य और ब्रह्मा के समयमान से विभाजित कर लाखों करोड़ों वर्षों में फैला दिया गया है।

युगों की धारणा को मूल रूप में व्याख्यायित करते हुए श्री युक्तेश्वर गिरि कहा करते थे कि प्रत्येक युग में उसकी अंतर और प्रत्यंतर दशा भी चलती है। वह दशा, अंतर्दशा और प्रत्यंतर दशा प्रत्येक युग के भीतर चारों युगों का एक चक्र और प्रवाहित करती है। उदाहरण के लिए इन दिनों यदि कलियुग का प्रवाह चल रहा है तो एक हजार वर्ष की दिव्य या मानवीय मान वाली इस अवधि में भी चार सौ, तीन सौ, दो सौ और सौ वर्षों का एक और चक्र चल रहा है। इस गणना के अनुसार सन् १९०० से २१०० तक कलि और सतयुग का संधिकाल है। अपने गुरु के सिद्धान्त को और सरल और बोधगम्य बनाते हुए जगदीश मुनि ने बताया कि बीसवीं और इक्कीसवीं शताब्दी मात्र इतिहास में परिवर्तन का एक महान दौर लेकर आयी है। आरंभ के सौ वर्ष पतन और पराभव के हैं। तो आगामी सौ वर्ष अर्थात इक्कीसवीं शताब्दी उत्कर्ष और वैभव का दौर लेकर आ रही है।

जगदीश मुनि ने शिविर के दौरान हुई एक गोष्ठी में अपने गुरु की स्थापना का परिचय दिया था। स्थापना नई नहीं है लेकिन वहाँ आये परिजनों के लिए कौतूहल वर्धक तो थी ही। जगदीश मुनि ने अपने गुरु की स्थापना को और स्पष्ट करते हुए कहा कि सूक्ष्म अर्थों में तो वर्षों और युगों के विस्तार में जाने की जरूरत भी नहीं है। भगवान वेदव्यास ने तो यहाँ तक कहा है कि कोई देश समाज जब निष्क्रिय और प्रसुप्त हो जाता है तो वह कलियुग का शिकार हो जाता है। जब जागता है तो द्वापर में प्रवेश करता है। उस समय देश समाज को अपने 'आत्मा' और 'धर्म' का बोध रहता है। जब वह उठकर बैठ जाता है, कुछ करने के लिए संकल्प बद्ध होने लगता है तो त्रेता युग का प्रभाव मानना चाहिए। देश समाज सक्रिय हो जाता है, चलने लगता है तो सतयुग में प्रवेश कर जाता है। इस तरह व्यक्ति और समाज में जो प्रवृत्तियाँ प्रबल होती हैं,

उन्हीं के अनुसार युग बदलते हैं। यह नियम किसी समूह, परिवार और व्यक्ति पर भी लागू हुआ देखा जा सकता है।

अमेरिकन वैदिक इन्स्टीट्यूट के डेविड फ्राली (अब स्वामी वामदेव शास्त्री) ने स्वामी युक्तेश्वर गिरिके युग सिद्धान्त को ऐतिहासिक घटनाओं से जोड़ कर भी देखा है। उनके अनुसार युगों का प्रवाह अपसर्ग और उपसर्ग क्रम से होता है अपसर्ग अर्थात सत, त्रेता, द्वापर और कलि इसके बाद उपसर्ग क्रम शुरु होता है यानी कलि, द्वापर, त्रेता और सतयुग। इस क्रम को अवरोहण और आरोहण भी कहते हैं। ऐसा नही है कि कलियुग समाप्त होने के बाद यकायक सतयुग आरंभ हो जाए। अथवा कालक्रम पूरा होते ही कोई महा विलक्षणकारी चमत्कार हो और रातों रात स्थितियाँ बदल जाए। ज्योतिष के ग्रंथों में युगों के साथ इसीलिए संधिकाल का उल्लेख भी किया गया। इस संधिकाल में परिवर्तन प्रक्रिया तेजी से संपन्न होती है। स्वामी युक्तेश्वर गिरि और उनके सिद्धान्त की व्याख्या करने वाले विद्वानों के अनुसार कलि के अंत और कल्कि अवतार के प्रकट होने का यही समय है।

अवतार तत्व की अनुभूति

भगवान अपने संकल्प मात्र से ही विश्व की धारा बदल सकते हैं, ब्रह्माण्ड का कायापलट कर सकते हैं? तो फिर उन्हें जन्म लेने या अवतार ग्रहण करने की क्या आवश्यकता है? स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती से अवतार तत्त्व का उपदेश सुनने के बाद भी शिष्य ऋषि प्रसाद के मन में सवाल घुमड़ रहा था। ऋषि आगामी शरद पूर्णिमा को संन्यास धर्म में दीक्षित होने वाला था। यह प्रसंग संवत २०३५ के आश्विन शुक्ल पक्ष की चतुर्थी या पंचमी तिथि का है। स्वामीजी दिल्ली के लक्ष्मीनारायण मंदिर में वेदान्त पर प्रवचन कर रहे थे। ऋषि उनके प्रवचनों को नोट करना चाह रहा था। ताकि आगे लिपिबद्ध किया जा सके और पुस्तक रूप में प्रकाशित हो। अवतार तत्त्व का उल्लेख आया तो ऋषि के मन में तुरंत यह प्रश्न कौंधा। उस समय तो प्रवाह में होने के कारण शंका या जिज्ञासा को स्थगित कर दिया लेकिन प्रवचन पूरा होने के बाद मन फिर उसी प्रश्न में उलझ गया।

अगले दिन जब ऋषि स्वामी जी की सेवा में था तो अनायास ही चर्चा चल पड़ी। स्वामीजी ने स्वयं पूछा, लगता है ऋषि, अवतार संदर्भ में तुम्हारे मन में ऊहापोह है। ऋषि ने हामी भरी और साथ ही यह भी कहा कि ऐसी कोई शंका भी नहीं है कि मन व्यग्र हो रहा हो। स्वामी जी ने कहा, 'भविष्य में तुम्हें वेदान्त का ही प्रचार करना है। इस दर्शन से अवतार का सामंजस्य आसान नहीं है। रात मैंने तुम्हारे बारे में तय किया है कि प्रवचन पूरे होने के बाद तुम यहाँ से हरिद्वार चले जाओ। वहाँ मैं तुम्हें एक ऐसे महापुरुष के सान्निध्य में कुछ समय रखना चाहता हूँ जो युगों के सामंजस्य की गुत्थी सुलझा दे। लोग उन्हें सिद्ध संत, विद्वान, मनीषी और अवतारी भी कहते हैं। सनातन धर्म की प्राचीन पौराणिक धारा के संतों को यह स्वीकार नहीं है, लेकिन मेरा मानना है कि उनका सान्निध्य तुम्हारे लिए बहुत उपयोगी होगा।'

युग निर्माण आन्दोलन मानवता को कुचक्र से उबारने और उसे आत्मकल्याण का सच्चा मार्ग दिखाने का एक सुव्यवस्थित अभियान है। उसका क्षेत्र और उसके कार्यक्रम व्यापक हैं तथापि मूल उद्देश्य लोगों के बौद्धिक स्तर को बदलना ही है। इसीलिए इस अभियान को विचारक्रान्ति या ज्ञानयज्ञ भी कहते हैं। समाज की वर्तमान दिशाओं को निकृष्टता से मोड़कर उत्कृष्टता की दिशा में नियोजित करने का यह अभियान ही इस युग की सच्ची सेवा है। ऐसा मानकर हममें से प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञानयज्ञ के लिए कुछ समय नियमित रूप से देते रहने का नियम बनाएं।

-परमपूज्य गुरुदेव

हम क्यों देखते हैं सपने?

सपनों से सबका एक अनोखा नाता है। सपनों की दुनिया है ही इतनी निराली कि इसमें खो जाने का मन करता है, सपने देखने में मन रमता है, इसमें हर व्यक्ति एक रस का अनुभव करता है, लेकिन जब सपना टूटता है और वह वास्तविक दुनिया से रूबरू होता है, तब उसे लगता है कि उसने क्या-क्या देखा। जो उसने सपनों में देखा, उसका क्या मतलब है क्योंकि सपने हमसे जुड़े होते हैं और हमें वो कुछ बताने, कुछ संकेत देने व कुछ दिखाने आते हैं। इसलिए सपनों का भी एक विशेष विज्ञान है।

सपने हम क्यों देखते हैं? सपनों का ताना-बाना आता कहाँ से है? इसका हमारी वास्तविक जिन्दगी से क्या नाता है? इस तरह सपनों के बारे में कई तरह के सवाल हमारे मन में उठते हैं। जब से इंसान ने निद्रा लेना शुरू किया है, तब से सपने भी अपने अस्तित्व में आए हैं। ये तब भी एक अबूझ पहेली की तरह हैं, जिनकी तह तक, जिनके सत्य तक कोई पहुँच नहीं पाया है, क्योंकि जितने लोग हैं, उतने तरह के लोगों के सपने हैं।

सपने सभी के अलग होते हैं और एक व्यक्ति के सपने पर दूसरे व्यक्ति का हस्तक्षेप नहीं हो सकता लेकिन सपनों में देखे जाने वाले कुछ दृश्य व घटनाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें बहुत लोग अपने सपनों में देखते हैं, जैसे- अपने सम्बन्धी जनों को देखना, जलप्रवाह देखना, बाढ़ देखना, पशु-पक्षियों को देखना, शिवलिंग देखना, साँप देखना, चलती हुई ट्रेन या बस के पीछे भागना आदि।

इस तरह हमें सपनों में बहुत सारे ऐसे दृश्य दिखते हैं, जो हमारे वास्तविक जीवन से सम्बन्धित होते हैं और कई दृश्य ऐसे भी दिखते हैं, जिनसे हम अपरिचित होते हैं या जिन्हें हमने कभी नहीं देखा होता है। विशेषज्ञों का ऐसा कहना और मानना है कि सपनों में हमें जो भी देखने को मिलता है, उसका इस संसार में कहीं न कहीं अस्तित्व होता है, भले ही हमें उसके बारे में पता हो या ना हो।

सपनों की दुनिया अनन्त है, इसका कोई ओर-छोर नहीं है, जीवन समाप्त होने पर ही सपने समाप्त होते हैं। दिन हो, चाहे रात, यदि व्यक्ति सोता है, तो उसे सपने दिख सकते हैं लेकिन गहरी नींद में होने पर उसे सपने नहीं दिखते। मनोविशेषज्ञों के अनुसार- हमारी नींद के चार चरण होते हैं, इसमें सबसे आखिरी चरण रेपिड आई मूवमेन्ट (आइ ई एम) है, जिसमें हम सपने देखते हैं। इसलिए जो व्यक्ति सपने देख रहा होता है, उसकी आँखें यदि अधखुली हों तो आसानी से यह देखा जा सकता है कि उसकी आँखों की पुतलियाँ घूम रही हैं, यानि कुछ देख रही हैं। इस अवस्था में हमारा दिमाग तो सक्रिय होता है, लेकिन अंगों का संचालन सुप्त होता है। यह स्थिति तब तक रहती है, जब तक कि दिमाग के वे हिस्से फिर से सक्रिय न हो जाएँ, जो शरीर की हलचल के लिए जरूरी होते हैं।

कभी-कभी व्यक्ति के सपने बहुत स्पष्ट होते हैं, तो कभी-कभी सपने धुंधले होते हैं। कभी-कभी देखे जाने वाले सपने वास्तविक जीवन में घटित भी हो जाते हैं और कभी-कभी ऐसे सपने दिखते हैं, जो वास्तविक जीवन की घटनाओं से विपरीत होते हैं। देखे जाने वाले सपने हर बार कुछ अलग होते हैं। कुछ सपने लुभावने होते हैं तो कुछ डराते भी हैं।

विशेषज्ञों के अनुसार- हर रात अरबों सपने इस पृथ्वी पर अनुभव किए जाते हैं और औसतन एक व्यक्ति को हर रात तीन से पाँच सपने देखने का अनुभव होता है। इस तरह हम अपनी जिन्दगी के छः साल सपने देखने में बिता देते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उन सपनों में से महज पाँच प्रतिशत सपने ही हमें याद रहते हैं और बाद में वह भी हमारी स्मृति से धूमिल हो जाते हैं।

सपनों के बारे में जानने की उत्सुकता लोगों में सदा से रही है। एक रिपोर्ट के अनुसार- सपनों पर सबसे पहली किताब मिस्र में लिखी गयी, जो हजारों वर्ष पुरानी है। मेसोपोटामिया में लगभग ५००० ईसा पूर्व मौजूद सभ्यता ने स्वप्नचिह्नों और उनके अर्थों को मिट्टी की गोलियों पर उकेरा था, जो इस बात का प्रमाण है कि सपने वास्तव में प्राचीन सभ्यताओं के लिए भी रुचि का विषय रहे हैं। ज्योतिष में तो सपनों का एक पूरा शास्त्र ही है।

सपनों पर मनोविज्ञान विषय में भी १७वीं शताब्दी से काम हो रहा है, अरस्तू से लेकर सिग्मण्ड फ्रायड तक, सबने सपनों को वास्तविक जीवन का संकेत माना है। आयुर्वेद भी सपनों की वास्तविकता को स्वीकारता है। सपने हमारे मस्तिष्क की कोई दबी इच्छा हो सकते हैं या फिर हमारे मस्तिष्क पर किसी घटना विशेष का प्रभाव हो सकते हैं अथवा हमारे भविष्य की कोई सूचना भी हो सकते हैं।

तंत्रिका विज्ञान की कुछ शोधों ने अभी हाल ही में यह जानने की कोशिश की थी कि हम सपने क्यों देखते हैं और सपनों में दिखने वाला घटनाक्रम कहाँ से उपजता है? इसमें यह पाया गया कि ज्यादातर सपने हमारी भावनाओं से जुड़े होते हैं। मनोविज्ञान और ज्योतिष दोनों ही इस बात पर एकमत हैं कि सपने हमारे बारे में बहुत कुछ बताते हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि मनोविज्ञान सपनों का आकलन मानसिक व शारीरिक सेहत की दृष्टि से करता है और ज्योतिष अपने संकेतों के आधार पर सपनों का अर्थ समझाता है।

आयुर्वेद की चरक संहिता में सपनों के सात प्रकार बताए गए हैं– दृष्ट, श्रुत, अनुभूत, प्रार्थित, कल्पित, भाविक और दोषज। इनमें से भाविक सपना भविष्य में होने वाली शुभाशुभ घटना की ओर संकेत करता है।

सपनों के बारे में दिलचस्प बात यह है कि जिसका आईक्यू जितना ज्यादा है, उसे उतने ही ज्यादा सपने आते हैं। कुछ अध्ययनों से यह पता चला है कि जानवर भी सोते समय मनुष्यों की तरह ही सपने देखते हैं। जन्म से दृष्टिहीन लोगों को भी सपने आते हैं लेकिन उन्हें कोई तस्वीर नहीं देखती है, बल्कि उनके सपनों में आवाज, गंध, स्पर्श और भावनाऐं ही आती हैं। एक मनुष्य रात में औसतन चार सपने देखता है और एक साल में लगभग १,४६० सपने देखता है। कुछ सपने ऐसे होते हैं जो लगभग हर किसी को आते हैं, जैसे– ऊँचाई से गिरना, किसी चीज के पीछे भागना, हवा में उड़ना आदि। हमारे कुछ सपने ऐसे होते हैं, जिनमें हम अपनी उन इच्छाओं को भी पूरा होते हुए देखते हैं जो वास्तविक जीवन में पूरी नहीं हो पायी हो।

परीक्षा छूट जाना, ट्रेन छूट जाना, ऑफिस के लिए लेट होना, ऊपर से गिरना, उड़ने की असफल कोशिश आदि इस तरह के सपने भी लोगों को आते हैं। देर होने से सम्बन्धित सपनों से यह पता चलता है कि व्यक्ति कुछ पूरा करने का अवसर खो चुका है।

कुछ स्वप्न अशुभ होते हैं, जैसे– स्वप्न में परिजनों की मृत्यु देखना, किसी को मरते हुए देखना, किसी को बीमारग्रस्त देखना, अंग-भंग देखना आदि। इस तरह के स्वप्न अपना बुरा प्रभाव न दिखाएँ, इसके लिए भी कुछ विधान बताए गए हैं। जैसे श्रीरामचरित मानस के अयोध्याकाण्ड का प्रसंग है, जिसमें जब अयोध्यानरेश दशरथ स्वर्ग सिधार जाते हैं और श्रीराम वनवास प्रस्थान कर जाते हैं, तब भरत को कुछ अपशगुन अनुभव होते हैं और साथ ही वो बुरा स्वप्न भी देखते हैं–

अनरथु अवध अरंभेउ जब तें।
कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें॥
देखहिं राति भयानक सपना।
जागि करहिं कटु कोटि कलपना॥
बिप्र जेवाँइ देहिं दिन दाना।
सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना।
मागहिं हृदयँ महेस मनाई।
कुसल मातु पितु परिजन भाई॥

अर्थात् जब से अयोध्या में अनर्थ प्रारंभ हुआ, तभी से भरत जी को अपशकुन होने लगे। वे रात में भयंकर स्वप्न देखते थे और जागने पर करोड़ों तरह की बुरी-बुरी कल्पनाऐं किया करते थे। वे प्रतिदिन ब्राह्मणों को भोजन कराकर दान देते थे। अनेकों विधियों से रुद्राभिषेक करते थे और महादेव जी को हृदय में मानकर उनसे माता-पिता, कुटुम्बी और भाईयों का कुशलक्षेम माँगते थे। भरत जी जिस तरह दुस्वप्नों के निवारण हेतु दान, पूजन, रुद्राभिषेक, प्रार्थना आदि करते थे, उसी तरह व्यक्ति को भी ये पुण्य कर्म करने चाहिए, ताकि उसके जीवन में अशुभ का प्रवेश न हो।

सपने हमारे जीवन से इतने जुड़े हुए हैं, कि हमारे जीवन में जो घटित होने वाला है, उसका एहसास हमें सपनों में पहले ही होने लग जाता है। यदि हमारे साथ शुभ होने वाला है, तो शुभ स्वप्न हमें दिखने लगते हैं, और उसी तरह यदि हमारे जीवन में कुछ अशुभ घटने वाला है तो उससे सम्बन्धित सपने हमें दिखने लगते हैं। इसलिए हमें सपनों के संकेत भी समझने चाहिए।

परामर्श का प्रभाव

आज के विद्यार्थी जीवन में बच्चों के लिए अधिक से अधिक अंक प्राप्त करना एक चुनौती बन गई है। समाज का परिवेश और विद्यालयीन शिक्षा की यह दुर्भाग्यपूर्ण विडम्बना है कि बच्चों के अंक-प्रतिशत को ही उसकी सम्पूर्ण योग्यताओं का पर्याय समझा जाने लगा है। बच्चों पर बढ़ते इस अनावश्यक दबाव से अभिभावक भी अछूते नहीं हैं। वे भी दूसरे बच्चों से तुलना एवं प्रतिस्पर्धात्मक दृष्टि अपनाकर अपने नौनिहालों से सर्वाधिक अंक प्राप्त करने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं, और इसे अपने मान-सम्मान के विषय के रूप में देख रहे हैं। शिक्षा प्रक्रिया में यह समस्या एक बड़ी महामारी का रूप ले रही है। यदि समय रहते इसकी सही समझ और समाधान की दिशा में कदम नहीं उठाये गये तो जल्द ही यह समस्या विद्यार्थियों का भविष्य और व्यक्तित्व दोनों विखण्डित करती दिखाई देगी।

विद्यार्थियों द्वारा परीक्षा में प्राप्त अंकों अथवा प्रतिशत को तकनीकी भाषा में विद्यार्थी का शैक्षिक निष्पादन कहा जाता है। शैक्षिक निष्पादन और विद्यालय समायोजन- ये दो समस्यायें प्रायः सभी विद्यार्थियों के लिए बड़ी चुनौतियाँ हैं। विद्यार्थियों की इन चुनौतियों और उत्पन्न समस्याओं के समाधान की दृष्टि से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान विभाग के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण शोध कार्य सम्पन्न किया गया है। इसमें शोधार्थी ने विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन और विद्यालय समायोजन से सम्बन्धित चुनौतियों का समाधान आधुनिक तकनीकी और मनोवैज्ञानिक सहयोग के माध्यम से खोजने की सार्थक पहल की है।

यह शोध कार्य सन् 2018 में शोधार्थी अभिषेक कुमार दुबे द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या के संरक्षण एवं डॉ. दीपक सिंह के निर्देशन में पूरा किया है। इस शोध कार्य का विषय है- **'मल्टीमीडिया लर्निंग तथा परामर्श का उच्च प्राथमिक विद्यालय के विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन एवं विद्यालय समायोजन स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।'**

शोधार्थी द्वारा अपने इस प्रयोगात्मक अध्ययन को सम्पन्न करने के लिए उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के उच्च प्राथमिक विद्यालय के कक्षा-आठ के 60 विद्यार्थियों का यादृच्छिक विधि द्वारा चयन किया गया। इन सभी विद्यार्थियों की आयु 13-14 वर्ष की थी एवं सभी पहली बार ही मल्टीमीडिया लर्निंग तथा परामर्श में सम्मिलित हो रहे थे। चयनित विद्यार्थियों का शोधार्थी द्वारा प्रयोग प्रारम्भ करने से पूर्व परीक्षण किया गया। परीक्षण में विद्यालय समायोजन स्तर मापन के लिए उपकरण के रूप में डॉ. अवधेश किशोर प्रसाद सिन्हा एवं डॉ. आर. पी. सिंह (1971) द्वारा निर्मित समायोजन आन्वेक्षिकी एवं शैक्षिक निष्पादन ज्ञात करने के लिए विद्यार्थियों के विषय से सम्बन्धित 50 बहुविकल्पीय प्रश्नों की प्रश्नावली का प्रयोग किया गया।

शोधार्थी ने प्रयोग में प्रथम परीक्षण के पश्चात् 30 विद्यार्थियों को मल्टीमीडिया अधिगम के द्वारा चार माह तक (अवकाश छोड़कर) प्रत्येक विषय का आधे घण्टे तक अध्ययन कराया तथा साथ ही सप्ताह में एक बार व्यक्तिगत एवं एक बार सामूहिक रूप से विद्यार्थियों को परामर्श भी प्रदान किया। दूसरे 30 विद्यार्थियों के समूह को ब्लैकबोर्ड अधिगम के माध्यम से प्रत्येक विषय को आधे घण्टे का शिक्षण चार माह की अवधि तक कराया गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर शोधार्थी द्वारा पुनः सभी चयनित विद्यार्थियों का परीक्षण किया गया।

प्रयोग से पूर्व और प्रयोग के पश्चात् के आँकड़ों एवं प्रश्नावली के माध्यम से प्राप्त किये गये शैक्षिक निष्पादन के परिणामों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोधार्थी ने यह पाया कि मल्टीमीडिया लर्निंग और परामर्श का विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन और विद्यालय समायोजन पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है। अतः विद्यालय में समायोजन सम्बन्धी समस्याओं के निवारण हेतु तथा शैक्षिक निष्पादन में सुधार हेतु मल्टीमीडिया लर्निंग व परामर्शन सेवाऐं उपयोग करना एक कारगर व प्रभावी उपाय हो सकता है।

शोध निष्कर्ष के आधार पर शोधार्थी का मत है कि मल्टीमीडिया लर्निंग के माध्यम से शिक्षा सम्बन्धी

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

समस्याओं का समुचित समाधान किया जा सकता है। मल्टीमीडिया लर्निंग के साथ-साथ विद्यालयों में परामर्श सेवाओं का होना भी अनिवार्य माना जाना चाहिए क्योंकि विद्यार्थियों के समक्ष उपस्थित मनोवैज्ञानिक समस्याओं का तुरन्त समाधान अत्यन्त आवश्यक है। यदि इस स्तर पर समस्याओं का समाधान नहीं किया गया तो आगे चलकर ये समस्याऐं विद्यार्थियों के जीवन में अवरोध उत्पन्न करती हैं, जिससे उनमें विकासात्मक बाधाऐं उत्पन्न होने की सम्भावना बन जाती है। परामर्श के माध्यम से इन समस्याओं का समाधान करके विद्यार्थियों के व्यक्तित्व विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है एवं उनके सन्तुलित विकास को सुनिश्चित किया जा सकता है।

इस शोध अध्ययन में प्राप्त होने वाले सार्थक परिणाम का मुख्य कारण शोधार्थी द्वारा अपनायी गई विशेष प्रक्रियायें हैं। इस शोध में दो प्रक्रियाओं का शोधार्थी ने प्रयोग किया है, एक मल्टीमीडिया लर्निंग और दूसरी परामर्श। ये दोनों प्रक्रियायें विद्यालयी शिक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रभावकारी कही जा सकती हैं। मल्टीमीडिया लर्निंग में पाठ्यसामग्री को दृश्य एवं श्रव्य दोनों माध्यमों से प्रस्तुत किया जाता है जो पारम्परिक माध्यमों से ज्यादा प्रभावकारी है। तकनीकी के इस युग में विद्यालयों में अध्ययन कार्य के लिए विभिन्न यन्त्रों का उपयोग किया जा रहा है, जिससे अधिगम को सुगम तथा रोचक बनाया जा सके। इस दिशा में मल्टीमीडिया लर्निंग एक प्रभावी उपकरण सिद्ध हुआ है। बहुत से संस्थानों, विद्यालयों में स्मार्ट क्लास के नाम से इस तकनीक का बखूबी उपयोग कर अध्ययन-अध्यापन को सुगम, आकर्षक और प्रभावकारी बनाया जाने लगा है।

शोध अध्ययन में मल्टीमीडिया के साथ परामर्श प्रक्रिया को अनिवार्य रूप से सम्बद्ध माना गया है। परामर्श भी शिक्षण में एक प्रभावकारी तकनीक हो सकती है, क्योंकि यह विद्यार्थियों के घर, परिवार, समाज, विद्यालय आदि के वातावरण से सामंजस्य हेतु समायोजन क्षमता को विकसित करती है। विशेषज्ञों का मत है कि परामर्श विद्यार्थी के आत्मविश्वास, आत्मबोध, आत्मनिर्देशन, आत्मसिद्धि, आत्मनिर्णयन और आत्म-उन्नयन का विकास करने में सहायक होता है। इससे विद्यार्थी के जीवन में समग्रता और सार्थकता का विकास सम्भव हो पाता है।

परामर्श का मुख्य उद्देश्य वर्तमान समस्याओं का समाधान एवं भविष्य की समस्याओं के समाधान हेतु समर्थ बनाना है। यह एक बहुआयामी मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तित्व विकास की बाधाओं को न्यून कर विकास की दिशा को सार्थकता प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। विद्यार्थियों को मानसिक, व्यवहारगत, भावनात्मक और समायोजनात्मक स्तरों पर परामर्श की आवश्यकता होती है। बच्चों के विद्यालयी जीवन में परामर्शदाता की भूमिका बच्चे, अभिभावक, अध्यापक आदि से सम्पर्क कर समस्याओं का निदान एवं अच्छे गुणों के विकास के लिए कार्य करना होता है। समुचित परामर्श के माध्यम से विद्यार्थियों के समक्ष आ रही समस्याओं, चुनौतियों का निराकरण कर उनकी अधिकतम निष्पादन क्षमता को सुनिश्चित किया जा सकता है।

शोधार्थी का यह प्रयास विद्यालयी शिक्षण में सहयोगी और कारगर उपायों को सामने लाता है। साथ ही विद्यार्थी जीवन की अनेक समस्याओं के समाधान की दिशा भी यह शोध कार्य प्रदर्शित करता है। इस शोध में अपनाई गई प्रक्रियायें विद्यार्थियों के लिए ही नहीं अपितु सभी स्तर पर अध्ययन-अध्यापन के कार्यों को सुगम, आकर्षक और प्रभावी बनाने का कारगर उपाय कही जा सकती हैं। शैक्षिक निष्पादन के साथ-साथ व्यक्तित्व की समस्याओं का समाधान और समुचित दिशा में विकास की सम्भावनाओं का मार्गदर्शन प्रदान करने वाली प्रक्रियायें इस शोध अध्ययन को और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण एवं समसामयिक बनाती हैं।

बेकार मत बैठो' एक ऐसा सबक है जो मनुष्य को आलसी बनने से रोकता है। आलसी बनना मन को चंचल बनाना है और काम करना मन को एकाग्र करने का साधन है।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

उद्देश्य के साथ करें तीर्थयात्रा

तीर्थ आध्यात्मिक चेतना के संवाहक स्थल हैं, जहाँ घनीभूत चैतन्य ऊर्जा विशिष्ट रूप में विद्यमान रहती है, जिसका संस्पर्श व्यक्ति को गहरे छू जाता है तथा ग्रहणशील सुपात्र व्यक्ति चेतना का रूपाँतरणकारी अनुभव कर पाते हैं। हर धर्म, संस्कृति, सम्प्रदाय एवं मत-मतान्तरों के अपने तीर्थ स्थल होते हैं, जिनसे लाभ पाने के लिए वहाँ तीर्थयात्रा का प्रावधान रहता है। अपने विशिष्ट महत्त्व के अनुरूप इनके अलग-अलग स्तर रहते हैं, जिनसे लाभान्वित होने का अपना-अपना विधान रहता है।

प्राय: तीर्थ प्रकृति की सुरम्य गोद में बसे होते हैं। कोई नदी या झील के किनारे, तो कुछ पहाड़ों के शिखर पर और कुछ पर्वतों की गोद में गुफा-कंदराओं में। यहाँ तक अधिकांशत: पैदल ही चलना पड़ता है, जिससे तीर्थयात्रा के माध्यम से शारीरिक तप एवं स्वास्थ्यवर्धन का उद्देश्य भी पूरा होता है और साथ ही चित्त परिष्कार भी। प्रकृति की गोद में बसा इनका प्राकृतिक परिवेश शहर से दूर प्राय: शुद्ध आबोहवा के साथ शांति-नीरवता लिए होता है, जिसका अतिरिक्त लाभ तीर्थयात्री पाते हैं। जो भी हो भौगोलिक एवं प्राकृतिक विशेषताऐं तीर्थस्थलों को अतिरिक्त आकर्षण प्रदान करती हैं।

तीर्थ स्थलों के साथ अधिकाँशत: कोई ऐतिहासिक, पौराणिक एवं सांस्कृतिक-धार्मिक महत्त्व अवश्य जुड़ा रहता है। कुछ अपनी पुरातनता के कारण विशिष्ट होते हैं, तो कुछ किसी ऐतिहासिक घटना के साक्षी होने के कारण महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, तो वहीं कुछ समृद्ध सांस्कृतिक-धार्मिक विरासत को संजोए होते हैं। इस तरह से ये किन्हीं समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के प्रतीक प्रतिनिधि होते हैं, जो यात्रिओं को सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हैं लेकिन इनका प्राण तो साथ में जुड़ा हुआ आध्यात्मिक भाव ही होता है, जिसके बिना किसी सच्चे तीर्थ की कल्पना नहीं की जा सकती।

ये प्राय: किन्हीं योगियों, यतियों, तपस्वियों, गुरुओं, पीरों, सिद्ध-संतों आदि की तपस्या से अनुप्राणित पावन स्थल होते हैं। उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा से आवेशित यहाँ का सूक्ष्म वातावरण पधारने वाले तीर्थयात्रियों में दिव्य भावों का संचार करता है। एक विशेष प्रकार की शांति, सात्विकता यहाँ विद्यमान रहती है, जो आगंतुकों को सहज ही अंतर्मुखी बनाती है व ध्यान की गहराईयों में ले जाती है। यह वातावरण ही इन तीर्थस्थलों को विशिष्ट बनाता है। इन स्थलों पर यदि यहाँ की आध्यात्मिक परम्परा के व्यक्ति भी रह रहे हों तो, स्थान का महत्त्व और बढ़ जाता है। इनके साथ वार्तालाप एवं दर्शन सत्संग का उद्देश्य पूरा करता है और कई ज्ञानवर्धक जानकारियों को भी देता है।

ऐसे पावन स्थलों पर उचित मनोभूमि के साथ पधारने की आवश्यकता होती है, जिससे की तीर्थचेतना का समुचित लाभ लिया जा सके। इसके लिए समय से पूर्व उचित तैयारी करनी पड़ती है। शारीरिक स्वास्थ्य व मजबूती को सुनिश्चित करना होता है, जिससे कि तीर्थयात्रा के श्रम व थकान को संभाला जा सके। शारीरिक स्वास्थ्य से भी अधिक आवश्यकता होती है मन के उत्साह की, जो किन्हीं शारीरिक अपंगताओं के बावजूद अपनी लक्ष्य सिद्धि के लिए संकल्पित होता है। उत्साह के साथ श्रद्धाभाव की भी आवश्यकता होती है, जिसे तीर्थयात्रा का प्राण कह सकते हैं। श्रद्धाभाव प्रकृति के घटकों में ईश्वरीय प्रवाह को सघन रूप में अनुभव करने की क्षमता देता है, जो सही मायनों में तीर्थाटन को एक योग साधना का रूप दे देता है।

श्रद्धाभाव से हीन सैर-सपाटा महज मौज-मस्ती तक सिमटी पिकनिक का रूप ले लेता है, जिनके साथ तीर्थयात्रा का महत्तर उद्देश्य पीछे छूट जाता है। ऐसे में ये पावन स्थल महज पिकनिक स्पॉट बन कर रह जाते हैं। इस कारण व्यक्ति में ऐसे स्थलों पर वह स्फुरणा नहीं जन्म ले पाती, जिसके लिए ये स्थल माने जाते थे। तीर्थ स्थलों में सात्विकता का अभाव यहाँ की पावनता को न्यून करता है। अत: सबका कर्तव्य बनता है कि इन स्थलों की पावनता अक्षुण्ण रहे, यहाँ के वातावरण में किसी तरह का प्रदूषण न हो।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

तीर्थ स्थलों की स्वच्छता एवं इको-फ्रैंडली होने पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यहाँ पर प्लास्टिक व अन्य कचरे को न फेंके। यदि ऐसा सामान साथ ले गए हों तो इन्हें समेट कर लाएँ या उचित स्थान पर डिस्पोज करें। तीर्थस्थल के प्राकृतिक परिवेश को किसी तरह की क्षति न पहुँचे, इसका विशेष ध्यान रखें। इसको और सुरम्य बनाने के लिए सामूहिक श्रमदान एवं सहयोग किया जा सकता है, जिसे तीर्थयात्रा का एक हिस्सा माना जा सकता है।

यदि हम इतनी तैयारी के साथ तीर्थयात्रा करते हैं, तो प्रकृति की गोद में बसे मनोरम स्थलों का तीर्थाटन अपने प्रयोजन को सिद्ध करने वाला साबित होगा व सभी इनसे जुड़े पुण्य एवं लाभ के भागीदार बनेंगे। शारीरिक फिटनेस, निरोगिता एवं आत्मिक शांति का प्रयोजन तो ऐसे में सहज रूप में ही सिद्ध होगा।

ऐसे पावन स्थलों की एकाकी यात्रा के साथ हम समूह को भी इसके लिए प्रेरित कर सकते हैं। अपने परिवार एवं शिक्षण या व्यवसायिक संस्थान के सुपात्र लोगों को ऐसी यात्रा का हिस्सा बना सकते हैं, जो सबके लिए एक शिक्षाप्रद एवं आध्यात्मिक अनुभव होगा तथा इसे एक स्वस्थ परंपरा को आगे बढ़ाने वाला प्रयास माना जाएगा।

राजहंस प्रतिवर्ष सुदूर देशों का प्रवास किया करते और कठोर शीत के चातुर्मास के समाप्त होते ही मानसरोवर आ जाते। ऐसे ही प्रवास के दौरान राजहंसों की टोली समुद्र तट पर कोणार्क राजवंश के उद्यान पर उतरी, वहाँ का माली इन राजहंसों का प्रतिवर्ष आतिथ्य करता था। इस बार जब राजहंस लौटने लगे तो माली रास्ते के लिए भी कुछ देने लगा, तो राजहंसों ने मना करते हुए कहा- तात! संचय पाप है, यह खाद्य अभावग्रस्तों को दे देना। कुछ भी मिले, कहीं से भी मिले, उदरस्थ कर लेने की काकवृत्ति घटिया लोगों का काम है।

राजहंस के ये शब्द वहीं पास के वृक्ष पर बैठे कौवे ने सुन लिये। वह पंख फुलाता हुआ राजहंसों के पास आकर उन्हें भला-बुरा कहने लगा और बोला- राजहंसों! तुहें अपनी श्रेष्ठता का अभिमान है। मुझसे प्रतियोगिता करो। इस विशाल समुद्र की पार करने की जिसमें शक्ति होगी वही श्रेष्ठ माना जायेगा। राजहंसों ने उसे बहुत समझाया कि पर वह नहीं माना और हंसों के साथ उड़ने लगा। आगे-आगे कौवा और पीछे राजहंसों की टोली।

कौवे को लंबी दूरी तक उड़ने की आदत न थी, अतः वह जल्दी ही थक गया। वह गिर कर समुद्र में डूबने वाला ही था कि राजहंसों को दया आ गयी और उन्होंने उसे अपनी पीठ पर बैठाकर पीछे लौटकर उसके स्थान तक पहुँचा दिया। राजहंस बोले- तात्! अपनी शक्ति से बढ़कर प्रदर्शन उचित नहीं होता, इससे अनर्थ हो सकता है। मिथ्या अभिमान नहीं करना चाहिए। इतना कहकर राजहंसों की टोली अपनी यात्रा पर उड़ चली।

भरोसे पर निर्भर है दोस्ती

दोस्ती एक ऐसा रिश्ता है, जो कभी भी बन सकता है, किसी से भी यह रिश्ता हो सकता है, लेकिन यह रिश्ता विश्वास व भरोसे पर टिका होता है। दोस्ती के इस रिश्ते में उम्र की सीमा नहीं होती, इसलिए किसी से भी दोस्ती हो सकती है, लेकिन फिर भी दोस्ती अधिकांशतः हमउम्र के लोगों में अधिक होती है क्योंकि हमउम्र के लोग ही ऐसे हैं, जो पढ़ाई-लिखाई के दौरान विद्यालयों में प्रायः साथ होते हैं और ज्यादातर समय साथ होते हैं। हमउम्र के लोगों की समस्या, विचारधारा व भावना को समझने में भी आसानी होती है, इसलिए हमउम्र के लोगों से दोस्ती होने की संभावना ज्यादा होती है।

बहुत कम मित्रताऐं ऐसी होती हैं, जो निस्वार्थ होती हैं, अन्यथा अधिकांश तो ऐसी होती हैं, जो किसी न किसी लाभ के लिए या सहायता के लिए होती है। कहा भी जाता है कि सच्चा दोस्त वही है जो मुसीबत के समय हमारे काम आए, और दोस्त की पहचान भी तब होती है कि जब हमारा मुश्किल समय होता है। मुश्किल समय में हमारे साथ कौन रहता है और कौन हमारा साथ छोड़कर चला जाता है, इससे हमारे रिश्तों की पहचान भी हो जाती है और हमारी दोस्ती की गहराई भी पता चल जाती है।

दोस्ती उन्हीं से होती है, जिनसे हमारा मन मिलता है, जिनके विचार, व्यवहार हमें अच्छे लगते हैं, जो समय-समय पर हमारा साथ देते हैं और हमारे साथ रहते हैं, उनसे प्रायः हमारी दोस्ती हो जाती है। दोस्ती गहरी तब होती है जब वह विपरीत परिस्थितियों से गुजरने पर भी खरी उतरती है। जहाँ गहरा विश्वास होता है, मन में अच्छा भाव होता है, वहाँ दोस्ती भी गहरी होती है।

आजकल किशोरों व युवाओं में एक बेहद लोकप्रिय ऑनलाइन प्लेटफॉर्म है- स्नैपचैट। स्नैपचैट के एक सर्वे से एक खास बात यह पता चली है कि दोस्ती में ईमानदारी को काफी अहमियत दी जाती है। रिपोर्ट में यह बताया गया कि जिनके पास कोई दोस्त नहीं होते, वे खुद को बहुत अकेला महसूस करते हैं और अपनों से भी कोई बात साझा करने में वे संकोच करते हैं। कई बार दूसरों से दोस्ती न कर पाना अवसाद का कारण भी बन जाता है, और स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि युवा इसके कारण अपनी जिन्दगी को दाँव पर लगा बैठते हैं।

मनोविशेषज्ञों का कहना है कि दोस्त मन के चिकित्सक जैसे होते हैं, जो मन के हर विरोधाभास को दूर करने में सहायक होते हैं। जिनके दोस्त होते हैं, वो अपने मन की बात उनसे साझा करके हल्का महसूस करते हैं, लेकिन जिनके दोस्त नहीं होते और जो न दोस्त बनाते हैं, उनके मन की बात मन में ही रह जाने से वो मनोग्रंथियों से ग्रसित होने लगते हैं।

जिस तरह नदियों का जल प्रवाहपूर्ण होने के कारण शुद्ध होता है, तो वहीं तालाब का पानी एक जगह रहने के कारण दूषित होने लगता है- उसी तरह यदि मन की बातें साझा होती हैं, तो मन हल्का होता है, निर्मल होता है, इससे मन की परेशानियाँ भी दूर होती हैं। वहीं यदि मन की बातें किसी से साझा नहीं होतीं, तो ऐसे मन वाले व्यक्ति बहुत परेशानियों से गुजरते हैं, उनका मन भारी होता है और मनोग्रंथियों से भी युक्त होता है। इसलिए बहुत जरूरी होता है कि मन की बातों को साझा किया जाए, चाहे वह किसी भी तरह से हो, चाहे किसी से बात करके हो या डायरी लिख करके हो, या खुद से बातें करके हो।

देखा जाए तो सच्चा दोस्त एक मनोविशेषज्ञ से कम नहीं होता, क्योंकि वो अपने दोस्त के मन की बात समझता है, अपने दोस्त के मन की परेशानियों को दूर करने में उसकी सहायता करता है। उससे बात करके उसकी मनोग्रंथियों को खोलने में सहायता करता है और सबसे बड़ी बात- दोस्त बनकर वह उसे ऐसा सहारा देता है, जिसके कारण मन में एक भरोसा होता है, एक खुशी होती है, और व्यक्ति को अपने दोस्त के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि वह अकेला नहीं है, बल्कि उसके दोस्त उसके साथ हैं, उसके साथ अपने दोस्तों का सहयोग है। इस एहसास के कारण व्यक्ति स्वयं को मानसिक रूप से पहले से ज्यादा सुरक्षित व ताकतवर महसूस करता है।

कुछ अध्ययन यह बताते हैं कि स्कूल, कॉलेज व यूनिवर्सिटी में पढ़ने के दौरान दोस्ती अधिक होती है। भले ही यह दोस्ती थोड़े समय के लिए हो या ज्यादा समय के लिए हो, लेकिन यह दोस्ती व्यक्ति के मन में एक ऐसी अमिट छाप छोड़ देती है, जिसके कारण वह दोस्ती और दोस्त बनने वाला व्यक्ति हमेशा याद रहते हैं।

जीवन की राहों पर अनेक व्यक्ति मिलते हैं और बिछुड़ते हैं, लेकिन दोस्त वही बन पाते हैं और हमसे जुड़ पाते हैं जो हमें समझते हैं, जो सच्चे होते हैं और जो हमारा भला चाहते हैं। जो हमें गलत रास्ते पर जाने से रोकते हैं और हमें सही दिशा की ओर जाने के लिए प्रेरित करते हैं, उनसे प्रति हमारे मन में अच्छा भाव होता है और यही अच्छा भाव हमें दोस्ती के रूप में उपहार में मिलता है।

एक अच्छा दोस्त वह व्यक्ति होता है, जो हमारे व्यक्तित्व के कारण हमारा मित्र होता है। एक अच्छा और सच्चा मित्र हमारी समस्त अच्छाईयों और बुराईयों से अवगत रहते हुए हमसे प्रेम और स्नेह करता है। ऐसा दोस्त हमेशा हमारी भलाई के बारे में सोचता है।

आमतौर पर हम उन लोगों को अपना मित्र बनाते हैं, जिनका साथ हमें आनंद देता है और प्रसन्नता का एक स्रोत प्रतीत होता है, जिनका साथ हमें खुद के बारे में अच्छा महसूस कराता है। जरूरी नहीं कि एक अच्छा दोस्त सदैव हमारी खुशी का कारण हो, यद्यपि एक अच्छा दोस्त सदैव हमारी भलाई में ही रुचि रखता है। संभव है कि वह हमें समय-समय पर हमारी बुराईयों और कमियों का आईना दिखाए, जिसके कारण हमें उसके प्रति अस्थायी नाराजगी भी हो, लेकिन देखा जाए तो वास्तव में एक सच्चा मित्र वही होता है, जो हमारा भला चाहता है, हमें गलत रास्ते पर जाने से रोकता है, हमारे दुःख से दुःखी होता है और हमारी खुशी के साथ वह भी खुश होता है।

दोस्ती तो भगवान कृष्ण ने भी सुदामा से की थी, जब वो विद्याध्ययन के लिए गुरु संदीपनी के आश्रम में गए थे और उन्होंने वह दोस्ती भी निभायी। मित्रता तो भगवान राम ने भी सुग्रीव से की थी, जब वे अपनी भार्या सीता की खोज में निकले थे और उन्हें रीछ-वानरों की मदद चाहिए थी, तब श्रीराम ने भी सुग्रीव से अपनी मित्रता भली प्रकार निभायी। गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस के किष्किन्धाकाण्ड में भगवान श्रीराम मित्रता के कुछ सूत्र देते हैं-

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी।
तिन्हहि बिलोकत पातक भारी॥
निज दुख गिरि सम रज करि जाना।
मित्रक दुख रज मेरु समाना॥

अर्थात् जो लोग मित्र के दुःख से दुःख नहीं होते, उन्हें देखने से भी बड़ा पाप लगता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु (बड़े भारी पर्वत) के समान जाने।

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥

अर्थात् मित्रता का धर्म है कि वह मित्र को बुरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे। उसके गुण प्रकट करे और अवगुणों को छिपावे॥

देत लेत मन संक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा।
श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

अर्थात् मित्रता में देन-लेन में शंका न रखें। अपने बल के अनुसार सदा हित ही करते रहें। विपत्ति के समय में तो सदा सौगुना स्नेह करें। वेद कहते हैं कि ये संत (श्रेष्ठ) मित्र के लक्षण हैं।

आगें कह मृदु बचन बनाई।
पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहि गति सम भाई।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

अर्थात् जो सामने तो बना-बनाकर कोमल वचन कहता है और पीठ-पीछे बुराई करता है तथा मन में कुटिलता रखता है। हे भाई! जिनका मन साँप की चाल के समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को तो त्यागने में ही भलाई है।

इस तरह मित्र जितना हमारा हित चाहने वाले होते हैं, कुमित्र उतना ही हमारा बुरा चाहने वाले होते हैं। व्यवहार चूँकि दोनों ही अच्छा करते हैं, इसलिए हमें मित्र व कुमित्र की भलीप्रकार परख करके ही अपने दोस्त बनाने चाहिए।

क्षर-अक्षर से परे परमात्मा हैं पुरुषोत्तम

(श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग नामक पन्द्रहवें अध्याय की सत्रहवीं किश्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के पुरुषोत्तम योग के सत्रहवें श्लोक की व्याया, इससे पूर्व की किश्त में की गयी थी। भगवान श्रीकृष्ण, उस श्लोक में अर्जुन से कहते हैं कि उत्तम पुरुष तो अन्य ही है, जो परमात्मा के नाम से पुकारा गया है। वही अविनाशी ईश्वर तीनों लोकों में प्रविष्ट होकर सबका भरण-पोषण करता है। श्रीभगवान यहाँ कह रहे हैं कि इस सृष्टि में तीन स्थितियाँ हैं। एक नाशवान शरीर है, परिवर्तनशील संसार है, दूसरी उस नाशवान शरीर में छिपी हुई अविनाशी आत्मा है और तीसरा, उत्तम पुरुष, पुरुषोत्तम वह है जो परमात्मा है। वह परमात्मा इन शेष दो स्थितियों का, शेष दो पुरुषों का अतिक्रमण कर गया है एवं इसीलिए वह शेष दो से भिन्न, उत्तम तथा विलक्षण है। इसे ऐसे भी समझ सकते हैं कि क्षर तथा अक्षर तो लौकिक हैं परन्तु परमात्मा, लोकों से परे, लोकों से पार होने के कारण अलौकिक है।

महर्षि पतंजलि योगसूत्र में इसी को कुछ ऐसे परिभाषित करते हैं कि वे ईश्वर, वे पुरुषोत्तम, वे परमात्मा-क्लेश, कर्म, विपाक और आशय से रहित एक विशेष प्रकार के पुरुष हैं (1/24)। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पंचक्लेश के नाम से पुकारे गए हैं क्योंकि ये ही कर्मबंधन का कारण बनते हैं। कर्म का मिलने वाला फल विपाक कहलाता है व उससे बनने वाले वासना रूपी संस्कार को आशय कहते हैं। नाशवान पुरुष, इन कार्यों को करने का भाव रखते हुए स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है और इसीलिए कर्मों के पीछे निहित भावना के अनुसार परिणाम को प्राप्त करने के लिए उसे भोक्ता बनना पड़ता है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि जो पुरुष इन भोगों से संपर्करहित है, वह विशेष पुरुष ही ईश्वर या पुरुषोत्तम है। यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अनेकों महापुरुष कर्मबंधनों को काटकर, बंधनमुक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं परन्तु ईश्वर या पुरुषोत्तम वे विशेष पुरुष हैं जिनका इन बंधनों से न कभी संपर्क हुआ और न होगा क्योंकि वे सदा से ही इनसे पार व परे हैं।

तदुपरान्त श्रीभगवान् कहते हैं कि–

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।

शब्द विग्रह- यस्मात्, क्षरम्, अतीतः, अहम्, अक्षरात्, अपि, च, उत्तमः, अतः, अस्मि, लोके, वेदे, च, प्रथितः, पुरुषोत्तमः ॥१८॥

शब्दार्थ- क्योंकि (**यस्मात्**), मैं (**अहम्**), नाशवान् जड़वर्ग क्षेत्र से (तो सर्वथा) (**क्षरम्**), अतीत हूँ (**अतीतः**), और (**च**), अविनाशी जीवात्मा से (**अक्षरात्**), भी (**अपि**), उत्तम हूँ (**उत्तमः**), इसलिये (**अतः**), लोक में (**लोके**), और (**च**), वेद में (भी) (**वेदे**), पुरुषोत्तम नाम से (**पुरुषोत्तमः**), प्रसिद्ध (**प्रथितः**), हूँ (**अस्मि**)।

अर्थात् श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं क्षर से अतीत हूँ और अक्षर से भी उत्तम हूँ इसलिए लोक में और वेद में 'पुरुषोत्तम' नाम से प्रसिद्ध हूँ। यहाँ श्रीभगवान् कह रहे हैं कि चाहे क्षर हो या अक्षर– स्वतन्त्र सत्ता, इन दोनों में से किसी की भी नहीं है और ये दोनों ही परमात्मा का अंश हैं। वैसे तो अक्षर, अविनाशी है परंतु वह स्वयं को क्षर मान लेने के कारण उसके अधीन हो जाता है जबकि

परमात्मा सदैव इनसे परे हैं और इसीलिए वे अक्षर से भी उत्तम है। ये परम पुरुष, उत्तम पुरुष, विशेष पुरुष, पुरुषोत्तम भी श्रीभगवान स्वयं ही हैं। प्रकृति के आधीन क्षर तथा अक्षर दोनों हैं। क्षर प्रकृति के गुणों में पूर्णतया लिप्त हो जाता है। अक्षर अविनाशी होने पर भी स्वयं को क्षर समझने लगता है। इनके विपरीत, पुरुषोत्तम तो सदा-सर्वदा प्रकृति के गुणों के पार हैं और इसीलिए उनको पुरुषोत्तम कह कर पुकारा जा रहा है।

श्रीमद्भगवद्गीता का यह सूत्र अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं सारगर्भित है। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार पुरुषोत्तम का पद, यह अवस्था-सर्वोच्च अवस्था है। इससे ऊपर एवं इससे बढ़कर और कुछ भी नहीं है। यही ज्ञान का सर्वोच्च शिखर, सर्वोत्कृष्ट अनुभूति है। अक्षर, क्षर से उत्तम माना गया है परंतु पुरुषोत्तम सबसे ऊपर है। यहाँ तक कि यह परम धाम से भी ऊपर उठकर है। इसी के संदर्भ में आचार्य शंकर, विवेकचूड़ामणि के १११वें सूत्र में कहते हैं-

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो
भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो
महाद्भुतानिर्वचनीयरूपा॥

अर्थात् वह न सत् है, न असत् है और न उभयरूप है; न भिन्न है, न अभिन्न है और न उभयरूप है; न अंगसहित है, न अंगरहित है और न उभयात्मिका ही है किंतु वह अत्यंत अद्भुत, अनिवर्चनीय रूप एवं सबसे परे पुरुषोत्तम परमेश्वर है।

इसी संदर्भ को लेते हुए यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं कि पुरुषोत्तम, सबसे ऊपर, सबसे श्रेष्ठ हैं। अक्षर तक की यात्रा नेति, नेति द्वारा संभव है, परंतु पुरुषोत्तम उसके भी पार हैं क्योंकि वो संपूर्ण व समग्र अस्तित्व का अतिक्रमण कर गए हैं। वे सभी रहस्यों से भी परे हैं, सभी सत्यों से बढ़कर हैं।

उनको जानकर क्षर तथा अक्षर का एक साथ व संपूर्ण ज्ञान संभव है। ऐसा इसलिए क्योंकि क्षर व अक्षर, परस्पर विरोधी दिखते हुए भी एक एक के ही प्रतिरूप हैं। पुरुषोत्तम के लिए एक साथ क्षर व अक्षर हो पाना संभव है क्योंकि वो इस सबसे पार व परे चले गए हैं। इसीलिए उनके लिए दोनों ही छोरों पर एक साथ हो पाना संभव है।

अनंतपुर में राजा रामदत्त का राज्य था। अनंतपुर की सीमा के समीप गंगादास नामक शिल्पी पत्थर की सुंदर-सुंदर मूर्तियाँ बनाया करता था। एक दिन राजा रामदत्त उधर से गुजरे तो गंगादास की बनायी मूर्तियों को देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने गंगादास से अपनी मूर्ति बनाने को कहा तो गंगादास ने मूर्ति बनानी प्रारंभ कर दी परन्तु मूर्ति उसकी कल्पना के अनुरूप नहीं बन पा रही थी।

उसने कई बार प्रयास किया पर असफल रहा। वह हारकर बैठ गया। तभी उसकी नजर एक चींटी पर पड़ी जो एक दीवार के उस पार गेहूँ के दाने को लेकर जाना चाह रही थी परन्तु बार-बार गिर जाती थी लेकिन उसने प्रयास नहीं छोड़ा और अंततः वह सफल हो गयी।

गंगादास को यह दृश्य लेखकर लगा जब निरंतर प्रयास से यह छोटी-सी चींटी सफलता पा सकती है, तो मैं क्यों नहीं? उसका खोया हुआ आत्मविश्वास लौट आया और इस बार वह अपनी कल्पना के अनुरूप मूर्ति बनाने में सफल हो गया। राजा मूर्ति देखकर मंत्रमुग्ध हो गया। उसने गंगादास को बहुमूल्य उपहार दिये और उसे राजशिल्पी घोषित कर दिया।

युग निर्माण में शिक्षकों की भूमिका

नयी पीढ़ी को गढने तथा युग निर्माण में शिक्षा का महत्त्व सर्वविदित है। शिक्षक सकारात्मक परिवर्तन का संवाहक होता है। वह अपने विषय एवं जीवन के प्रति जिज्ञासा से भरे अनगढ़ विद्यार्थियों को एक कुम्हार की भाँति अंदर-बाहर से तराशता है, गढ़ता है। आज जब समाज, राष्ट्र एवं विश्व संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं तो ऐसे में शिक्षकों की भूमिका और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। प्रस्तुत है कुछ ऐसे ही गुण जिनको धारण कर शिक्षक एक आचार्य के रूप में अपनी गुरुतर भूमिका का निर्वहन कर सकता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि एक अच्छा शिक्षक अपने विषय का जानकार होता है। यह तो उसका प्राथमिक गुण है, जिसके आधार पर उसे शिक्षण के गुरुतर कार्य के लिए चुना जाता है। अपने विषय के आधिकारिक विद्वान एवं निष्णात बनने के लिए वह हर कोशिश करता है और अपनी पारगंतता को नित्य और प्रखर करता रहता है। यह कार्य वह शिक्षक के साथ एक विद्यार्थी की भूमिका में भी करता है। एक अच्छा शिक्षक जीवनपर्यन्त एक विद्यार्थी होता है।

सबसे पहले एक शिक्षक में विद्यार्थी भाव का होना आवश्यक है। इसी के आधार पर वह निरंतर नूतन ज्ञान का अर्जन करता रहता है और अपने विषय का अधिकारी विद्वान बनता है। इसी आधार पर वह विद्यार्थियों में सीखने की ललक पैदा करता है, उन्हें भी जीवनपर्यन्त विद्यार्थी बनाता है। यदि शिक्षक में विद्यार्थी भाव नहीं है तो फिर उसे शिक्षण कार्य भारभूत लगता है, वह अपने पेशे के साथ वह न्याय नहीं कर पाता, जिसकी उससे अपेक्षा की जाती है। साथ ही ऐसे में विद्यार्थी इसका खामियाजा भुगतने के लिए अभिशप्त होते हैं।

शिक्षक में संवेदनशीलता एवं बौद्धिक ईमानदारी एक अहम् गुण है। शिक्षक बहुत बुद्धिमान या होशियार न भी हो, लेकिन यदि वह संवेदनशील है तथा उसमें बौद्धिक ईमानदारी है तो वह अपने पेशे के साथ न्याय करने के लिए आवश्यक तप-त्याग एवं श्रम करता है और देर-सबेर अपनी योग्यता सिद्ध करता है। जहाँ वह स्वयं को न्यून पाता है, वहाँ अपनी विषय की पकड़ बनाने की हर चेष्टा करता है और वह सहज रूप में एक अभिभावक के रूप में अपनी भावपूर्ण भूमिका निभाता है।

एक अच्छा शिक्षक एक अविभावक की भाँति अपने सभी विद्यार्थियों पर नजर रखता है और पूरी कक्षा को एक साथ लेकर चलने का प्रयास करता है। कक्षा में होशियार बच्चों की जिज्ञासाओं को शांत करता है, मध्यम बच्चों का ध्यान रखता है, साथ ही पिछड़ रहे बच्चों को भी संभालता है। विद्यार्थियों के स्तर के अनुरूप उन्हें अलग-अलग विधियों से सिखाने की कोशिश करता है। सबके साथ एक जैसा व्यवहार करता है। विद्यार्थियों के साथ भेद-भाव को वह अपराध जैसा कृत्य मानता है। विद्यार्थियों के बीच भेदभाव असंतोष को जन्म देता है, जिससे कक्षा एवं शिक्षण संस्थान का वातावरण बिगड़ता है।

एक अच्छा शिक्षक अपने विषय के ज्ञान के साथ अपने समाज, संस्कृति एवं इसके सामयिक स्वरूप का भी ज्ञान रखता है। वह लकीर का फकीर नहीं होता। वह इसके इतिहास की जानकारी रखता है। साथ ही चारों तरफ घट रहीं घटनाओं पर भी सम्यक् दृष्टि रखता है। इस तरह वह अपने विषय को जीवन एवं समाज से जोड़ते हुए इसे प्रगतिशील एवं युगानुकूल बनाता है। विद्यार्थियों को अपने विषय की अंतर्विषयक बारीकियों से परिचय करता है व उन्हें इस दिशा में गहरे उतरने के लिए प्रेरित-प्रोत्साहित करता है। यदि शिक्षक नित्य घट रही घटनाओं से परिचित नहीं और न ही समाज व संस्कृति के सूक्ष्म ताने-बाने से परिचय रखता हो, तो फिर उसे आज के तेजी से परिवर्तित हो रहे जटिल दौर में अपने विषय के साथ न्याय करना कठिन हो जाएगा।

आज के विज्ञान एवं तकनीकी प्रधान युग में टेक्नोलॉजी जीवन का अभिन्न अंग बन चुकी है और तेजी से बदल रही है। कम्प्यूटर, स्मार्टफोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया जीवन के अनिवार्य हिस्सा बन चुके हैं। ऐसे में इनके उपयोग की जानकारी से वंचित व्यक्ति बदलते समय की धारा के साथ कदमताल नहीं कर पाएगा। शिक्षक पर

भी यह सत्य लागू होता है और विशेष रूप में उसके लिए यह मायने रखता है। आज जब सारा ज्ञान का भण्डार नाना रूप से इंटरनेट व सोशल मीडिया पर उपलब्ध है, तो ऐसे में इनका उपयोग न कर पाना एक तरह की अपंगता मानी जाएगी। एक प्रगतिशील शिक्षक कुछ समय निकालकर इन पर अपनी न्यूनतम पकड़ अवश्य बनाता है।

एक अच्छे शिक्षक में समाज को देने का भाव प्रबल होता है। एक ओर वह अपने छात्र-छात्राओं को इसके लिए तैयार करता है, तो साथ ही अपने शोध एवं सृजन कार्यों के माध्यम से समाज के वंचित, पिछड़े, जरुरतमंद तबके के लिए विशेष रूप से स्थान देता है। वह उन्हें समाज को संवेदित-आंदोलित करती समस्याओं से रूबरू करता रहता है और अपने स्तर पर इनके समाधान के लिए प्रयास भी करता है। एक अच्छा शिक्षक एक जिम्मेदार नागरिक की भूमिका में सक्रिय रहता है, जो समाज के लिए बिना कुछ किए चैन से नहीं बैठ सकता और विद्यार्थियों को भी इसके लिए प्रेरित करता है।

एक अच्छा शिक्षक अपने राष्ट्र के प्रति अनुराग के भाव से भरा होता है, इसकी एकता-अखण्डता के लिए सहज-स्फूर्त रूप में सजग, सचेष्ट एवं सक्रिय रहता है। साथ ही उसकी दृष्टि पूरे विश्व को स्वयं में समेटे होती है। वह एक राष्ट्रभक्त होने के साथ एवं विश्वनागरिक की भूमिका में भी होता है। आत्मवत् सर्वभूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम् जैसे उदात्त भाव उसमें प्रवाहमान होते हैं। इनके आधार पर वह अपने अकादमिक एवं गैर अकादमिक कार्यों को अंजाम देता है व अपने विषय एवं संस्था का क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधित्व करता है। अपने समाज एवं राष्ट्र की अहर्निश सेवा के साथ वह इनके संस्कृति दूत, सृजन सैनिक बनकर अपनी भूमिका वैश्विक पटल पर निभाता है।

एक अच्छा शिक्षक अपने विषय में सच्चा नेतृत्व प्रदान करता है। वह विद्यार्थियों के साथ स्वयं भी विषय की गहराईयों में उतरता है। जहाँ आवश्यकता पड़े तो वहाँ स्वयं आगे आकर प्रकाशपूर्ण नेतृत्व प्रदान करता है। इसके लिए वह ज्ञानार्जन को तप का रूप मानता है और इसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए वह तैयार रहता रहता है। अतिशयोक्ति न होगी यदि कहें कि सच्चा शिक्षक एक योगी की मनोभूमि में जीता है। जीवन एवं विषय के समाधान सूत्रों को समाधि की गहराईयों में प्राप्त करता है और मुक्तहस्त होकर विविध माध्यमों से इनका वितरण करता है।

ये हैं कुछ गुण जो एक शिक्षक को आचार्य की भूमिका में प्रतिष्ठित करते हैं, जिनके माध्यम से शिक्षा- व्यक्ति व समाज निर्माण, राष्ट्र उत्थान एवं वैश्विक कल्याण का माध्यम बनती है। शिक्षक इन गुणों के प्रकाश में अपनी समीक्षा करते हुए, इनमें उत्तरोत्तर वृद्धि के साथ युग निर्माण के महत्तर कार्य में अपना सार्थक योगदान दे सकते हैं।

एक फकीर को एक स्वर्णमुद्रा मिली। उसने यह निश्चय किया कि जो सबसे गरीब होगा उसे ही मैं यह मुद्रा दूँगा। एक दिन उसे पता लगा कि उसके देश का राजा पड़ोसी देश जो कि अकालग्रस्त था, उसके ऊपर आक्रमण करने जा रहा है। यह सुनने पर फकीर ने वह स्वर्णमुद्रा राजा को दे दी।

राजा ने इसका कारण पूछा तो फकीर बोला- 'हमने इस स्वर्णमुद्रा को सबसे गरीब व्यक्ति को देने का निश्चय किया था इसलिए आपको दिया है।' राजा बोला- 'मेरे पास इतना धन, राज्य, सेना आदि सब कुछ है फिर मैं सबसे गरीब कैसे हुआ?' फकीर बोला- 'आपके पास इतना सब कुछ होते हुए भी आप अकालग्रस्त देश को हड़पने जा रहे हैं, फिर आपसे गरीब कौन होगा?' राजा को अपनी भूल का एहसास हो गया।

युवा प्रतिभाओं का देश

भारत युवाओं का देश है। इसके रग-रग में प्रतिभा घुली हुई है, केवल उसे पहचानने एवं जाग्रत करने की आवश्यकता है। एक दशक भी नहीं बीता जब भारत हमेशा अपने यहाँ के बुद्धिजीवियों के विदेश पलायन (ब्रेन ड्रेन) की बातें किया करता था। ९० के दशक में बेहतर वेतन और बेहतर कैरियर की संभावनाओं के कारण भारत के सबसे ज्यादा पढ़े-लिखे लोग विदेश ही जाया करते थे। भारतीयों के इसी विदेश प्रेम के चलते ही अमेरिका की सिलीकोन वैली इतनी फली-फूली। वर्तमान स्थिति में बाजी बिल्कुल पलट गई है। आज युवा मानव संसाधन ही भारत की ताकत है।

परिवर्तन का प्रभाव यह है कि देश के अधिकांश युवक अब गृहनगर में ही रोजगार के अवसर तलाशने लगे हैं। कई बार तो इनके लिए वे ज्यादा वेतन के लालच को भी अनदेखा कर देते हैं। देश के शीर्ष बिजनेस मैनेजमेंट स्कूल इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, अहमदाबाद के छात्रों द्वारा विदेशों के बेहतरीन पेशकश ठुकराए जाने के मामले इस वर्ष बढ़कर सैंकड़ों में पहुँच गए। छः छात्रों ने तो इस प्रक्रिया में ही भाग नहीं लिया, क्योंकि वे पहले ही अपने ही देश में खुद का काम करना चाहते थे। बरसों तक पास होने वाले छात्रों को विदेश की दौड़ लगाते देखने वाले नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन (एनआईडी) से निकले युवा भी अब भारतीय कंपनियों में ही काम तलाश रहे हैं। विकास क्षेत्र में भी ऐसा ही माहौल देखने को मिल रहा है।

जहाँ तक आईआईएम अहमदाबाद के छात्रों की बात है तो वे अमेरिका की तुलना में भारतीय अर्थव्यवस्था को लेकर ज्यादा उत्साहित हैं। इनकी राय में यह भारत में बने रहने का सही वक्त है, क्योंकि देश की आर्थिक स्थिति तेजी से मजबूत होती जा रही है। घरेलू बाजार जबरदस्त उछाल की तैयारी में है और निश्चित तौर पर उन्हें ऐसी ही जगह पर होना चाहिए जहाँ भविष्य सुनहरा हो, फिर भले ही इस वक्त वेतन विदेश की तुलना में कम क्यों न हो।

इस वक्त देश में रहकर कम वेतन हासिल करना दरअसल भविष्य में ज्यादा वेतन के लिए निवेश की तरह ही है। प्रभजीत सिंह, निखिल वासवानी, विनीत लाड़िया और श्रद्धा वैद्य जैसे विदेशी नौकरी ठुकराने वाले युवाओं को यह यकीन है कि भारत की ताजा तरक्की किसी बुलबुले की तरह अस्थायी नहीं है। नई पीढ़ी के विद्यार्थियों में भी यही धारणा है कि भारत तरक्की की इस लंबी दौड़ में अमेरिका, रूस और यूरोप तक को परेशानी में डाल देगा।

ऐसा हो सकता है कि इस वक्त हमें विदेश में बेहतर धन एवं सुविधा मिले, लेकिन दो वर्ष के भीतर हम पूरी दुनिया को बेहतर रोजगार की तलाश में भारत की ओर कूच करते हुए देखेंगे। हम भारतीय होने के कारण यहाँ के बाजार को ज्यादा अच्छी तरह से समझ सकते हैं। यही वजह है कि जो इस वक्त यहाँ रुक रहे हैं उनका भविष्य विदेश जा रहे लोगों की तुलना में ज्यादा उज्ज्वल है।

यह युवा पीढ़ी का अपने पर विश्वास ही कहा जाएगा कि इनमें से कई ने तो यहाँ मिल रहे वेतन से पाँच गुना ज्यादा वेतन के विदेशी प्रस्ताव को ठुकरा दिया है। इससे निश्चित ही दुनिया के उन बड़े रोजगारदाताओं को झटका लगा होगा जो अभी भी इस खुशफहमी में थे कि भारत में 'ब्रेन ड्रेन' करना आसान है। भारत आने वालों में डॉश्च बैंक, गौल्डमैन, लेहमैन ब्रदर्स, मेरिल लिंच और मोर्गन स्टेनले जैसी बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ थीं तो क्या अब हम ब्रेनड्रेन की उल्टी गंगा देख रहे हैं? इसके बढ़ते रुझान को देखें तो यह सही लगता है।

इसका एक और संकेत इस बात से मिलता है कि अप्रवासी भारतीयों ने भी अब अपने देश लौटने के रास्ते खोजने लगते हैं। एक अन्य चौंकाने वाला सुखद पहलू यह है कि विदेश में जाने की राह में देशभक्ति की भावना भी रोड़ा बन रही है। यह पीढ़ी देश के प्रति अपने कर्त्तव्य को समझ रही है। उन्हें न केवल इस बात का अहसास है कि वे यहाँ भी विकास कर

सकते हैं बल्कि उनमें यह सोच भी पनप रही है कि उन्होंने इस देश से लिया काफी कुछ है और अब वक्त उसे वापस लौटाने का है।

आईआईएम के एक बैच के छात्रों का कहना है कि हम जैसे पढ़े-लिखे लोग इस वक्त देश को चाहिए क्योंकि वह विकास के नए आयामों को छूने जा रहा है। इन छात्रों ने कई बार काफी अच्छे विदेशी नौकरी के प्रस्ताव ठुकरा दिए हैं। उनका कहना है कि देश में रहकर वे अगली पीढ़ी को विकसित करने के लिए तैयार करना चाहते हैं।

एक सवाल यह भी उठ रहा है कि भारत तो कई वर्षों से तरक्की की राह पर है फिर आज अचानक क्या हुआ कि सोच में फर्क आ रहा है। फरीद जकारिया के मुताबिक इसका एक कारण है कि यहाँ चीन की तरह सरकार के कारण विकास नहीं हुआ है। भारत में विकास की यात्रा का कारण अव्यवस्थित है और इसलिए इसमें ज्यादा कुशल एवं सक्षम मानव संसाधन की आवश्यकता है।

अव्यवस्था के बगैर प्रबंधन का कोई महत्त्व नहीं है। व्यवस्था बुद्धि, कार्यशैली और मेहनत ही प्रबंधन का आधार है। देश की मजबूत होती अर्थव्यवस्था और भारत की कामयाबी ही युवाओं को नहीं रोक रही है बल्कि देश के प्रति निष्ठा और प्रेम भी इसके पीछे एक बड़ा कारण है। वाकई भारत में काम करने का आनन्द ही कुछ और है। यहीं पर हमको ऐसी परिस्थितियों से जूझना पड़ता है जो केवल भारत में ही मिल सकती हैं। पश्चिम की चकाचौंध और पैसे की तुलना में कुछ लोगों के लिए यह ज्यादा बड़ा आकर्षण है। सफलता में जब अपनेपन की मिठास घुल जाती है तो इसका आकर्षण एवं आनन्द बहुगुणित हो उठता है। अपनों को विकसित होते देखकर अपनों को बड़ी खुशी मिलती है और आत्मविश्वास बढ़ता है। जो इस तथ्य से परिचित है वह अपने ही वातावरण में प्रबंधन खोजेगा और युवाओं में ऐसा हो भी रहा है। संभवतः यह हमारे युवा वर्ग में एक बड़े रूप में आकार ले। अतः हम सबको इस दिशा में क्रियाशील होना चाहिए।

ग्लेड्स्टन इंग्लैंड के प्रधानमंत्री थे। उनकी गणना संसार के सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञों में की जाती है। एक दिन वे घूमने निकले, तब एक गाड़ीवान से उनकी भेंट हुई। गाड़ीवान ने गाड़ी में लोहा भर रखा था। ग्लेड्स्टन ने गाड़ीवान से लोहा लादकर लाने से मिलने वाले किराए आदि के बारे में पूछताछ की। इतने में रास्ते में एक टीला आ गया। घोड़े को गाड़ी खींचने में तकलीफ होने लगी। यह देखकर ग्लेड्स्टन ने गाड़ीवान से पूछा- 'अब तू क्या करेगा?' गाड़ीवान ने कहा-'और क्या किया जा सकता है, कंधा लगाना पड़ेगा।'

ग्लेड्स्टन बोले- 'अच्छा, चलो मैं भी कंधा लगाता हूँ।' यह सुनकर ग्लेड्स्टन गाड़ी वाले के साथ कंधा लगाने लगे। थोड़ी देर में गाड़ी टीले पर चढ़ गई। गाड़ी वाले ने ग्लेड्स्टन का आभार माना और ग्लेड्स्टन अपने रास्ते चले गए। आगे जाने पर एक आदमी ने गाड़ीवान से कहा- 'तुम जानते हो वह आदमी कौन था?' गाड़ीवान बोला- 'नहीं तो, मैं क्या जानूँ?' उस व्यक्ति ने कहा- 'अरे वे तो ग्लेड्स्टन थे, अपने राष्ट्र के प्रधानमंत्री।' नादान गाड़ीवान आश्चर्यचकित होकर बोला- 'कौन, ग्लेड्स्टन?' ऐसी थी उस राष्ट्र के अध्यक्ष की सादगी और सरलता।

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

आध्यात्मिकता के मूल सिद्धान्त

[द्वितीय किश्त]

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव समस्त साधकों को आध्यात्मिकता के मूल सिद्धान्तों से परिचित कराते हुए कहते हैं कि व्यक्ति की नासमझी को समझदारी में बदलने का नाम ही आध्यात्मिकता है। यदि व्यक्ति के दृष्टिकोण में परिवर्तन हो जाता है और वह एक विवेकशील मनुष्य की तरह जीवन को सही सिद्धातों पर जीने का प्रयत्न करता है तो यह कहा जा सकता है कि आध्यात्मिकता के मूल सिद्धांतों को उसने हृदयंगम कर लिया है। इसके उपरांत पूज्य गुरुदेव भगवान को पुष्प अर्पित करने से लेकर उनको जल चढ़ाने तक की समस्त प्रक्रियाओं के पीछे निहित भाव को स्पष्ट करते हैं। वे कहते हैं कि इन आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के पीछे का भाव ही उनका मूल सिद्धांत है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

सेवा का आनंद

मित्रो! कागावा किसी को चाचा जी, किसी को ताऊ जी, किसी को भईया जी, किसी को दादा जी कहते और सबको अपना बनाते चले गये। हर समय उन्हीं बीमारों की सेवा करते, जो किसी मुसीबत में फँसे होते, उनकी सहायता करते। शाम को दूसरी जगह जाकर दो घंटे ट्यूशन करते और पचास रुपये महीने कमा करके ले आते। बस यही उनके गुजारे का धन था। इसी गुजारे के धन के द्वारा कागावा सारे-के-सारे गाँव की सेवा करने लगे। गंदे जनों की सेवा करने लगे। एक दिन, एक छोकरी उनके पास आयी और पूछा—कागावा आप कहाँ जाते हैं? उस लड़की को वे ट्यूशन पढ़ाते थे। उन्होंने कहा—मैं तो गंदे मोहल्ले में रहता हूँ। जो दुःखी और दरिद्र हैं, उन्हीं में तो भगवान हैं। भगवान हाथ पसारता है और यह कहता है कि दरिद्र और पिछड़े लोगों के रूप में मैं ही हूँ। आओ, कोई है जो मेरी सेवा करे, सहायता करे। मैंने तो भगवान को गंदेवाले मोहल्ले में देखा और उन्हीं की सेवा करने के लिए चला गया।

मित्रो! उस छोकरी ने कहा कि क्या हमें भी सेवा करने का मौका मिलेगा? कागावा ने कहा—हाँ, तुम भी चल सकती हो। उसने देखा कि जापान के कागावा की झोपड़ी में कुछ भी नहीं था। सारे दिन उन गंदे लोगों की सेवा करते देखा। उस छोकरी ने कहा—कागावा! तुम्हें इस जगह पर क्या मजा आता है? उन्होंने कहा—इस मजे को और इस आनंद को चखना हर आदमी का काम नहीं है। क्यों? क्योंकि हर आदमी इंद्रियों का गुलाम है क्योंकि हर आदमी वासना और तृष्णा का गुलाम है। इसलिए उसको दौलत चाहिए, साधन चाहिए। यह आनंद तो त्याग का आनंद है, सेवा का आनंद है। यह महानता का आनंद है, जो किसी-किसी भाग्यवान को मिलता है और वह भाग्यवान मैं हूँ, जो सेवा करने में जीवन लगा रहा हूँ।

छोकरी ने कहा—मैं भी आपके पास दो-पाँच दिन रहूँ? कागावा ने कहा—हाँ, तुम भी मेरे साथ दो-पाँच दिन रह सकती हो। वह दो-पाँच दिन रही, तो उसने कहा कि यह आनंद का जीवन है, यह स्वर्ग का जीवन है। मैं भी अपने जीवन को इसमें लगाना चाहूँगी। कागावा ने

कहा—मेरे पास तो घर भी नहीं है, धन भी नहीं है। मेरे पास दौलत कहाँ है, मेरे पास साधन कहाँ है, मेरे पास पलंग कहाँ है, फिर मैं तुम्हें कैसे कहूँ कि तुम मेरे साथ-साथ रहो? मेरी जीवनसंगिनी बन करके रहो? मुझे तुम्हारा प्रस्ताव नामंजूर है, क्योंकि मैं तुम्हारी सुविधा के लिए कुछ भी नहीं कर सकता। अपना पेट पालने के लिए ही बड़ी मुश्किल है।

मित्रो! छोकरी ने कहा—पेट तो कुत्ते भी पालते हैं, बंदर भी पालते हैं, पेट तो चीटियाँ भी पालती हैं, मक्खियाँ भी पालती हैं। पेट पालना क्या कोई बड़ी समस्या है? मैं तो आपकी तरह सेवा करूँगी और ऐसा महान व्यक्ति, जिसको मैं देवता कहूँ, भगवान कहूँ, उसके चरणों को धोकर के पियूँगी। दोनों साथ हो गये और मित्रो! जापान का बड़ा वाला काम होने लगा-समाज सेवा का। उनकी इतनी बड़ी लंबी कहानी है कि अब मैं आपसे क्या कहूँ? कहाँ तक कह सकता हूँ? बस अंत में यह हुआ कि जापान के गाँधी कागावा को हर आदमी ने यह कहा कि यह जिंदा भगवान है कागावा के रूप में। जो समाज सेवा में अपने आपका उत्सर्ग कर चुका है, उसका नाम भगवान है। भगवान का दर्शन करने के लिए लोग आये और उनके चरणों में दान-दक्षिणा चढ़ाने के लिए आये। कागावा जापान के गाँधी बन गये। एक छोटावाला, मामूलीवाला विद्यार्थी जापान की जनता को कितना प्रभावित कर सका। जापान की जनता पर अपनी गहरी छाप डाल सका, जिसकी न माँ थी और न बाप था। वह महात्मा गाँधी जैसा महान बन गया। मित्रो! जब मनुष्य के भीतर महानता आती है, तो भगवान की दौलत, भगवान का प्यार, भगवान का सहयोग अनायास ही न जाने कहाँ से बरसता हुआ चला आता है।

भगवान के अहसान हमारे ऊपर

साथियो! हिंदुस्तान के एक आदमी का, एक और किस्सा सुनाऊँ? राजस्थान का 22-23 साल का एक छोकरा, संस्कृत में मध्यमा तक पढ़ा हुआ, एक स्कूल में अध्यापक था। चार साल शादी को हुए थे। 18 साल में उसका विवाह हो गया था और बाईस साल की उम्र में उसकी पत्नी का देहांत हो गया। चार साल का बीबी का साथ। उसे पत्नी की याद आयी, तो कलेजा थामकर रह गया। आपकी और हमारी बीबी का देहांत हो जाता, तो पहले सोचते कि मरने से पहले दुबारा विवाह हो जाये, पर उस आदमी की तबीयत अलग थी। उसके मन में आया कि जिस महिला ने मेरे जीवन में चार साल इतने आनंद और उल्लास से व्यतीत किये, उसका एहसान किस तरीके से चुकाना चाहिए? महान व्यक्तियों के सोचने का ढंग हमारे आपके जैसा होता, तो गया जी में जाकर के पिंडदान, तर्पण करते और कहते कि ले यह कच्चा आटा का पिंड खा। वह कहती—अरे बाबा! रोटी तो बना करके ले आ। कच्चा आटा खिलाता है पागल। लेकिन उसने गया जी में कच्चा आटा खिलाने की अपेक्षा, दूसरे तरीके अख्तियार किये और पत्नी के गाँव चला गया। गाँव के लोगों से कहा कि आपका और आपकी छोकरी का एहसान मेरे ऊपर है। मैं इस गाँव के लिए कुछ करना चाहता हूँ?

मित्रो! भगवान के भक्त के ऊपर सारे समाज का एहसान होता है, माँ-बाप का एहसान होता है। जो ऐसा सोचता है, वह बड़ा आदमी है। जो कहता है कि गुरुजी! तीन माला करते-करते एक महीना हो गया और कुछ भी काम नहीं बना। नौकरी में तरक्की भी नहीं हुई। महाराज जी! ऐसा मालूम पड़ता है कि गायत्री माता नाराज हो गयीं। बताइए क्या करना चाहिए? गायत्री माता ध्यान ही नहीं देतीं। अब आप ही कुछ और बता देते। अब मैं क्या कहूँ? केवल यही कह सकता हूँ कि लोहे की सलाखें गरम करके ला और आचार्य जी के चिपका दे। एक महीना जप कर लिया, बहुत बड़ा एहसान कर दिया। शिकायत करता है कि फलाना काम नहीं हुआ, ढिकाना काम नहीं हुआ। एहसान जताता है—भगवान के ऊपर और आचार्य जी के ऊपर।

जिस दिन से तुम पैदा हुए हो, तुम्हारे ऊपर भगवान के असंख्य एहसान हैं। उन सबको भूल गये और कहते हो कि हमने तीन माला जप किया, पर परीक्षा में पास नहीं किया। मेरा यह काम नहीं किया, वह काम नहीं किया। इस तरह मित्रो! हमारी छोटी और खोटी सोच कि हम हर किसी पर अपना एहसान जताते रहते हैं। हम बहुत घटिया आदमी हैं और हमें भगवान तक पहुँचने में बहुत देर लगेगी। जिनके मन में हमेशा यह आता है कि भगवान का एहसान हमारे ऊपर है, मेरे गुरु का है, समाज का है, माता-पिता का है। मैं सभी के एहसानों से दबा पड़ा हूँ, तो समझिये कि वह आदमी है, जिसको हम आध्यात्मिक कह सकते हैं और जिसमें आगे बढ़ने की कुब्बत और हिम्मत हो सकती है।

मित्रो! इसी तरह का था वह अध्यापक। उसने उस गाँव में जाकर कहा—आप सभी के हमारे ऊपर बहुत एहसान हैं। इस गाँव के लिए और यहाँ के लिए मैं कुछ करना चाहता हूँ? लोगों ने कहा—क्या करना चाहते हैं? उन्होंने कहा—मैं नौकरी से इस्तीफा दूँगा और आपके गाँव में रहना चाहूँगा। इस गाँव की बच्चियों को शिक्षित बनाऊँगा और सारी जिंदगी इसी में खर्च करूँगा। लोगों ने पागल और बेवकूफ कहा। पैंतालीस रुपये महीने की नौकरी छोड़ेगा और यहाँ बिना कीमत के पढ़ायेगा। उन्होंने कहा—नौकरी करने के लिए जिंदगी नहीं है। लोकमान्य तिलक ने जब 30 रुपये महीने की नौकरी मंजूर कर ली, तो लोगों ने कहा—30 रुपये में से तो तुम्हारे मरने के लिए कफन भी नहीं बचने वाला है। उन्होंने कहा—कफन की चिंता औरों को करनी चाहिए, जिनको लाश सँभालनी हो। मुझे लाश नहीं सँभालनी है, इसलिए मुझे चिंता करने की कोई बात नहीं।

मित्रो! गोपाल कृष्ण गोखले, जिन्होंने शिक्षा समिति बनाई, उन्होंने अध्यापकों को नौकरी पर रखा और स्वयं उसके संचालक बने और 30 रुपये महीने लेने लगे। लोगों ने कहा कि आपके अध्यापकों और नौकरों को 200 रुपये महीना मिला और आप इस समिति के संचालक और संस्थापक हैं, उसे केवल 30 रुपया महीना बस। उन्होंने कहा कि आदमी को खर्च करने के लिए इतना ही काफी है। जो आदमी अपने चाल-चलन और सेवा की छाप दूसरों पर नहीं डाल सकता, वह दूसरों से काम लेने का हकदार नहीं हो सकता। अध्यापकों को दो सौ रुपया मिलता है और मुझे मिले ढाई सौ रुपये, तब अध्यापक चुपके-चुपके कहेंगे कि ढाई सौ रुपये मिलते हैं, इसीलिए लंबी-चौड़ी बातें बनाता है। कम रुपये मिलते, तो दाल-आटे का भाव पता चलता कि बच्चों का पालन कैसे किया जाता है? बड़ा आया हुकूमत चलाने वाला।

कर्त्तव्यपालक होते हैं महापुरुष

मित्रो! महापुरुष कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए पैदा होते हैं। वह छोटा वाला अध्यापक नौकरी से इस्तीफा देकर गाँव में चला गया और बच्चियों को-कन्याओं को पढ़ाने लगा। पहले लोगों ने उसे पागल कहा, फिर उसका विरोध किया कि पता नहीं कब किसको लेकर के भाग जाये? मारकर भगाओ इसे। कई लोगों ने कहा कि यह पागल हो गया है। इसका दिमाग खराब हो गया है। इसके पास बच्चियों को नहीं भेजा जाएगा? वह बेचारा ढूँढ-ढूँढकर थोड़ी-बहुत लड़कियों को ले आता। लोगों ने कहा कि बिना मतलब के कोई कुछ नहीं करता। यह बहुत चालाक है, ऐसा न हो कि ये हमारी बच्चियों को भ्रमित करे। सेवा के लिए हर स्थिति पार करनी पड़ती है। पहले उसका मखौल उड़ाया जाता है, मजाक बनती है। फिर भगवान के भक्त का विरोध किया जाता है। जब यह मालूम पड़ता है कि इसमें कुछ ताकत है, कुछ काम करने लगा है, तो दुनिया उसके पास आने लगती है। दूसरी वाली स्कीम, तीसरी वाली स्कीम है—जब दुनिया झुक जाती है और उसके पाँव पर फिर अपना हृदय निकाल कर रख देती है।

मित्रो! वह गाँव में रहकर बच्चियों को बुलाता रहा, पढ़ाता रहा। फिर कुछ दिनों बाद लोगों ने कहा कि यह इंसान नहीं है? यह भगवान है। इंसान वह आदमी है, जिनकी ख्वाहिशें उनको खाये जाती हैं। इंसान वह है, जो वासनाओं और तृष्णाओं की जिंदगी में बँधे हुए जानवर के तरीके से है और भगवान वह आदमी है—जिसको तृष्णाओं ने, वासनाओं ने खोल दिया और जो कर्त्तव्यों के पीछे चल पड़ा। उस आदमी का नाम भगवान है। लोगों ने कहा कि यह अध्यापक नहीं भगवान है और भगवान के लिए लोग अपने हृदय से उपयोग की सारी-की-सारी चीजें उठाकर लाये। साधन जुटाये। चारपाई, कपड़े बनवाये। मित्रो! उस भगवान का काम बढ़ता हुआ चला गया। राजस्थान के वनस्थली बालिका विद्यालय के संस्थापक हीरालाल शास्त्री थे। जब राजस्थान में पहली बार मुख्यमंत्री का चयन होना था, तब लोगों ने कहा—राजस्थान का मुख्यमंत्री भगवान को बनाना चाहिए। कौन-सा भगवान? जो संस्कृत में मध्यमा तक पढ़ा हुआ था। जो 45 रुपये महीना पाता था—अध्यापक हीरालाल शास्त्री।

मित्रो! मैं आपको महापुरुषों की कहानियाँ सुना रहा हूँ, दृष्टांत दे रहा हूँ? नहीं, मैं यह बता रहा हूँ कि जिन व्यक्तियों ने जीवन में महानतम काम किये, तो उसी तरह से भगवान के प्यार, भगवान के अनुग्रह और भगवान के सहयोग के अधिकारी होते चले गये। उनके सभी कार्य पूर्ण होते चले गये। मैं भी अपने गुरु की आज्ञा से उसी रास्ते पर चलता हुआ चला गया, जिसे कि मैं आपको सिखाता हूँ। मैंने आध्यात्मिकता के सिद्धांतों को अपने जीवन में घोल-घोल करके पिया है। आप लोगों ने जुबान

से कहा है और कान से सुना है।

जुबान से कहने और कान से सुनने की चीज अध्यात्म नहीं है। क्या हो गया? कैसे बैठे हो साहब! डॉक्टर ने दवाई बता दी। क्या नाम बताया? स्ट्रेप्टोमाइसिन। स्ट्रेप्टोमाइसिन के इंजेक्शन लगाने पड़ेंगे। आपने कान से सुन लिया। कौन-सी दवा? स्ट्रेप्टोमाइसिन। जुबान से कह रहे हैं कि कम्पाउण्डर साहब! हमें दवा दीजिए। दवा दे दी और आपने रख ली। अब आपने क्या किया? लकड़ी की एक माला उठाई और दवा-स्ट्रेप्टोमाइसिन चौकी पर रख दी और उसके चारों ओर धूप घुमाई और जप करना शुरू कर दिया—स्ट्रेप्टोमाइसिन ------ स्ट्रेप्टोमाइसिन। सवा लाख का अनुष्ठान करना है—स्ट्रेप्टोमाइसिन का। अरे बाबा! उसे खाता है या जप करता है। नहीं, महाराज जी! हम तो अनुष्ठान करेंगे। और खायेगा नहीं? नहीं, खायेंगे तो नहीं। खायेगा नहीं, तो तेरी टी.बी. अच्छी होने वाली नहीं है। अच्छे होने के लिए डॉक्टर की बात माननी पड़ेगी।

भगवान को जीवन में समावेश करिए

मित्रो! भगवान की विचारणाएँ ऐसी नहीं हैं कि जिनको कानों से सुनने के बाद अपना उद्देश्य पूरा कर सकते हैं और भगवान उस आदमी का नाम नहीं है, जिसका नाम जुबान से कहने के बाद आपका उद्देश्य पूरा हो सकता है, बल्कि उसको जीवन में समाविष्ट करना पड़ेगा, समावेश करना पड़ेगा। जब आप दवा खाना शुरू करेंगे, स्ट्रेप्टोमाइसिन लेंगे और दूसरी गोलियाँ खायेंगे, विटामिन 'डी' खायेंगे, अमुक चीजें खायेंगे, तब आपके शरीर में कुछ ताकत आयेगी। बीमारियाँ भागेंगी और आप स्वस्थ हो जायेंगे। यह तब होगा, जब आप दवा खायेंगे। आध्यात्मिकता खाने की चीज है, मान लेने की नहीं। आध्यात्मिकता सुनने की चीज नहीं है, काम में लाने की है।

मित्रो! मैं उसी आध्यात्मिकता का वर्णन कर रहा हूँ, जो मेरे गुरु ने मुझको सिखायी। मैं सारी जिंदगी भर उसे काम में लाता रहा और काम में लाने का परिणाम यह है कि मैं एक छोटा सा इनसान, नगण्य सा इनसान लोगों की निगाह में क्या हो गया? मैं बताना नहीं चाहता। मरने के बाद, मेरे चले जाने के बाद विचार कीजिए कि वह आदमी जिसका कि हम व्याख्यान सुनने के लिए गये थे। जिस आदमी के पास रहे, क्या वह छोटा आदमी था या बड़ा आदमी था? उसने क्या पाया था? हाँ मित्रो! हमने बहुत पाया और अपने प्रभाव की दृष्टि से न जाने क्या-क्या पाया? मैं वह आदमी हूँ कि किसी की सेवा करने के लिए खड़ा हो जाऊँ और अपने मन से आशीर्वाद देने लगूँ, तो न जाने क्या-से-क्या हो जाय? घटना सुनाऊँ? नहीं, मैं नहीं सुनाता हूँ, पर एकाध घटना आपकी जानकारी के लिए बता ही देता हूँ। दो वर्ष पहले मुझे भोपाल जाने का मौका मिला। भोपाल चला गया और मेरा व्याख्यान हो रहा था।

एक लंबा-सा आदमी जीप में बैठा और मेरा भाषण सुन रहा था। जब मैं चलने लगा, तो उसने कहा कि मैं आपसे कुछ बात करना चाहता हूँ। मैंने कहा—कहो क्या बात करना चाहते हो? उसने कहा कि आपको तो मालूम नहीं, आप मुझे नहीं जानते। मैं आपको जानता हूँ। मैंने कहा—बताइये न फिर, आप जानते हैं तो? मेरी पत्नी आपकी शिष्या है। मैंने कहा—होंगी। बहुत से लोग हैं, आते हैं, हाथ जोड़कर बैठ जाते हैं। कोई पैसा थोड़े ही देना पड़ता है। होंगी, लाखों शिष्य हैं, कोई कहाँ, कोई कहाँ? बोला कि मेरी धर्मपत्नी आपकी शिष्या है। मैंने कहा होगी। उसने ही मुझे भेजा है, आपसे काम की बात कहनी है। मैंने कहा—यहाँ एडवोकेट का घर है। मैं वहाँ ठहरा हुआ हूँ, आप शाम को आ जाना।

आध्यात्मिकता के चमत्कार

मित्रो! साढ़े आठ बजे वह अपनी जीप दौड़ाता हुआ वहीं आ गया। उन्होंने कहा—मेरा नाम श्यामाचरण शुक्ल है। अरे आपका नाम तो बहुत सुन रखा है मैंने। पर देखा नहीं आपने। मैंने कहा—मैंने कब देखा? उन्होंने कहा कि बात-बात में मैं इंदिरा गाँधी से और काबरा से यह वायदा करके आया था कि मैं रानी सिंधिया की मिनिस्ट्री को उखाड़ दूँगा और गोविंदराम जी को लगा दूँगा। इसी के लिए जनता परिषद के मुकाबले मुझे कांग्रेस पार्टी का नेता बनाया गया था। गुरुजी! मैंने तो सारी-की-सारी ताकत लगा दी। अब मुझे मालूम पड़ता है कि सिंधिया को उखाड़ना, गोविंदराम जी को लगाना सरल नहीं है। अब मैं क्या मुँह दिखाऊँगा? अब इंदिरा गाँधी जी से क्या कहूँगा? या तो सिंधिया को उखाड़ो या फिर हटो, किसी और को बनाते हैं। गुरुजी! अब क्या करना चाहिए? अगर आपकी कृपा हो जाय किसी तरीके से, तो काम बन सकता है। मेरी पत्नी ने कहा है कि आचार्य जी को लोग जानते नहीं हैं। जो जानते हैं, उनको ही इनकी

कीमत मालूम है। हमारे पिताजी के पच्चीसों काम आचार्य जी ने करवाये। कहाँ रहते हैं? इंदौर के थे और उनके बीसों काम पूरे हुए थे।

मित्रो! उनकी लड़की को विश्वास था कि आचार्य जी के पास जाया जाये, तो काम बन सकता है। तब वह आये। उन्होंने कहा—गुरुजी! कैसे भी करके, किसी भी तरह से आप मुझे राजस्थान का मंत्री बना दीजिए। मैंने कहा—बाबा! मैं क्या मंत्री बनाता हूँ या भगवान की बात कहता हूँ। मेरा काम मंत्री बनाना है या गायत्री का प्रचार-प्रसार करना है। उन्होंने कहा—नहीं, आप कह दीजिए कि मैं मंत्री बन जाऊँगा? फिर तो मैं देख लूँगा।

मैंने कहा—मैं कैसे कह दूँ? मैं कोई मंत्री नहीं हूँ, गवर्नर नहीं हूँ, क्या कह सकता हूँ। रात को 8:30 बजे से लेकर 12:30 बजे तक वह आदमी चार घंटे बैठा ही रहा। खाना खाया और ये बात, वो बात करता रहा। फिर मैंने गंभीरता से कहा—अच्छी बात, अब की बार तुम मंत्री हो जाओगे। कब तक मंत्री हो जाऊँगा? अब तीन महीने रह गये हैं और वे सचमुच मंत्री बन गये। यह बात कानों से कान फैलती चली गयी। जब मैं ग्वालियर गया, तब रानी सिंधिया इस तरीके से मेरे आगे-पीछे पड़ती थीं, जैसे बिल्ली दूध के आगे-पीछे पड़ती है। ग्वालियर में पाँच कुंडीय यज्ञ था। रानी सिंधिया ने कहा—आचार्य जी हमारे नगर में आ रहे हैं। उनका स्वागत, उनकी व्यवस्था न की जाये, यह भला कैसे हो सकता है? हमारी बात बिगड़ जायेगी। ग्वालियर के नागरिक हम भी हैं और नागरिक होने के नाते हमको भी हक है कि हम आचार्य जी का स्वागत करें। शहर में पाँच कुंडीय यज्ञ में 250 आदमी इकट्ठे नहीं होते, लेकिन वहाँ इतने लोग कैसे आ गये?

मित्रो! सुखाड़िया राजस्थान के मुख्यमंत्री थे। उनको पता चला कि आचार्य जी हमारे यहाँ आये हुए हैं। कानों कान बात न जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँच गयी? उन्होंने कहा कि मैं आचार्य जी का व्याख्यान सुनना चाहता हूँ। मेरे पास खबर आयी कि सुखाड़िया जी 15 मिनट आपका भाषण सुनना चाहते हैं और दर्शन करना चाहते हैं। किसी ने उनको बताया है कि आपने आचार्य जी का दर्शन नहीं किया, तो आपने कुछ भी नहीं किया। सुखाड़िया जी आये और बोले—15 मिनट मैं आपका भाषण सुनूँगा। मैंने कहा—बैठ जाइये। 15 मिनट उन्होंने भाषण सुना, फिर हाथ जोड़कर बोले—मेरे लायक कोई काम नहीं बताएँगे क्या? मैंने कहा—कुछ होगा तो बता दूँगा। अभी क्या बता सकता हूँ? आप अपना काम ईमानदारी से कीजिए, यही क्या कम है। जो आपके ऊपर जिम्मेदारिया हैं, वे ही काफी हैं।

मित्रो! एक बार यू.पी. के गवर्नर विश्वनाथन आये। उन्होंने कहा—मुझे आचार्य जी से मिलना है। उनके बारे में मुझे बहुत जानकारियाँ हैं। उनकी सूचना आयी कि आपसे बात करना चाहते हैं। वे मथुरा आये। उन्होंने कहा—मैं भगवान के दर्शन करने मथुरा आया था, लेकिन मैं भगवान के दर्शन नहीं कर सका, पर मैंने एक जीते-जागते भगवान को दखा और वह व्यक्ति है—आचार्य जी। भारतवर्ष की इतनी सेवा किसी ने नहीं की, जितनी आपने की। लोगों ने उनसे कहा कि आपने ये क्या कह दिया कि सब लोगों ने जितना काम किया, उतना काम एक आदमी ने अकेले किया। आपने ऐसे क्यों कहा? उन्होंने कहा कि जो कुछ मैंने कहा, वह मेरे हृदय की सच्ची अनुभूति है। जैसे मैंने सुना, देखा, वैसा ही पाया।

मित्रो! एक लंबी यात्रा के बाद हमने कुछ पाया है। आप यह कहें कि हमारी भी मदद कर दीजिए, तो बेटे, हम आपकी हमेशा मदद करेंगे। आपके घुटनों में दर्द होता है। मैं आपके दर्द को बंद कर दूँगा, पर क्या इससे शांति आ जाएगी? कोई शांति नहीं आयेगी। आपका घुटने का दर्द बंद हो जाएगा, तो कान में दर्द शुरू हो जायेगा। फिर कहेंगे कि कान का दर्द बंद करो। अरे बाबा! मैं कोई डॉक्टर हूँ क्या? पहले बच्चा नहीं होता था, तो बच्चा हो गया। फिर कहेंगे कि साहब! हमारी बेटी विधवा हो गयी। उसका कुछ इंतजाम कर दीजिए। मैंने क्या दुनियादारी का ठेका ले रखा है। एक बार आशीर्वाद दे दिया, अब बार-बार मैं क्या कर सकता हूँ? सारी दुनिया में मुसीबतें हैं। सारी दुनिया में कष्ट हैं। संसार में सुख-दुःख तो चलते रहते हैं।

आपने छोटी-छोटी चीजों की तमन्नाएँ मेरे सामने रखीं और आपने मूलमंत्र को अपने मन में से निकाल दिया, जो कि एक ही लक्ष्य है—अध्यात्म, जिसे पाने के बाद में आदमी निहाल हो जाता है और आदमी न जाने क्या-से-क्या हो जाता है? मैं उस बड़े रास्ते पर आपको चलाना चाहता था। मैं यह नहीं चाहता कि छोटी-छोटी चीजों के लिए आप बार-बार मुझे कहें। आप न भी कहें, तो भी मैं पूरा कर दूँगा, क्योंकि मेरा मन बहुत ही कोमल और बहुत ही मुलायम है।

[क्रमशः]

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

समग्र शिक्षा के क्षेत्र में सर्वोच्च समान का अधिकारी बना विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर शिक्षा जगत में एक ऐसा अनूठा प्रकल्प है जहाँ की शिक्षण प्रक्रिया और पद्धति विद्यार्थी जीवन को समग्रता और सार्थकता के शिखर पर पहुँचाने हेतु प्रतिबद्ध हैं। विद्यार्थियों के आन्तरिक व्यक्तित्व को सँवारने और बाह्य जीवन को सफलता की दिशा में आगे बढ़ाने के उद्देश्य से इस परिसर में निरन्तर बहुआयामी क्रियाकलाप और विभागीय स्तरों पर शैक्षाणिक प्रयास किये जाते हैं। फलस्वरूप यहाँ पढ़ने वाले विद्यार्थी में सद्गुणों-सत्प्रवृत्तियों के विकास के साथ-साथ उनके विषय एवं योग्यता सम्बन्धी क्षेत्र में रोजगार के पर्याप्त अवसर भी उपलब्ध रहते हैं। उल्लेखनीय है कि यहाँ की डिग्री पूर्ण करने के पूर्व ही प्राय: विद्यार्थियों का देश-विदेश में कार्य करने हेतु चयन हो जाता है। कैरियर के लिए या आगे की पढ़ाई के लिए अथवा स्वावलम्बन-स्वरोजगार के लिए यहाँ के विद्यार्थी शत-प्रतिशत अग्रणी पंक्ति में खड़े नजर आते हैं।

हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी अनेक विषयों के विद्यार्थियों का परिसर में अध्ययरत रहते हुये ही राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के संस्थानों में प्लेसमेंट हो गया है। विद्यार्थियों की इन उपलब्धियों में उनके विभागों की सराहनीय भूमिका, प्रयास और प्रेरणायें सम्मिलित हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय का कम्प्यूटर विभाग तो सत्र के आरम्भिक दिनों से ही विभिन्न स्तरों पर प्लेसमेंट इवेन्ट का आयोजन करता रहा है। इस इवेन्ट के अन्तर्गत सेमिनार, वर्कशाप व अल्पकालीन प्रमाण-पत्र पाठ्यक्रम आदि विशेष गतिविधियाँ संचालित की जाती हैं। कम्प्यूटर विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. अभय सक्सेना के अनुसार प्रतिवर्ष ग्रीन कम्प्यूटिंग, आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस, कम्प्यूटिंग क्लाउड व नई-नई तकनीकों के माध्यम से विद्यार्थियों को रचनात्मक और ज्ञानवर्धक तथ्यों से अवगत कराया जाता है।

प्लेसमेंट के सन्दर्भ में प्रो.सक्सेना ने बताया कि इस वर्ष आई.टी. के क्षेत्र में विशेष स्थान रखने वाली टी.सी.एस. कम्पनी द्वारा भी हमारे विद्यार्थियों को चयन किया गया है। साथ ही अक्रोनक्स, एस.डी.ए.डी. टेक्नोलॉजी, एक्सीलेंस टेक्नोलॉजी, सॉलिड विजन, आई.डी.एस. टेक्निकल वैल्यू, एच.ए.एल. आदि कम्पनियों में विद्यार्थियों को सॉफ्टवेयर डेवलपर, आई एप्लिकेशन डेवलपर, सॉफ्टवेयर इंजीनियर, पी.एच.पी. डेवलपर, जावा डेवलपर, नेट डेवलपर आदि पदों पर चयनित किया गया है।

इसी क्रम में कुछ विद्यार्थियों का चयन पर्यटन कम्पनी, ए.बी.डी. हॉलीडे व इंडिया ट्रिप में आई.डी. व सॉफ्टवेयर डेवलपर के रूप में भी हुआ है। विद्यार्थियों की इन उपलब्धियों पर प्रतिकुलपति जी ने कम्प्यूटर विभाग की सराहना करते हुये चयनित विद्यार्थियों को शुभकामनायें प्रदान कीं। प्रतिकुलपति जी ने कहा कि इस परिसर के विद्यार्थी तकनीकी के साथ-साथ जीवन जीने की कला की योग्यता भी रखते हैं। यहाँ के छात्र जहाँ भी जायेंगे; वहाँ के सामाजिक वातावरण और कार्य संस्कृति को निश्चित रूप से सकारात्मक दिशा प्रदान करेंगे।

परिसर के पर्यटन प्रबन्धन विभाग द्वारा भी प्रत्येक वर्ष विद्यार्थियों के प्लेसमेंट के लिए अनेक तरह की रचनात्मक गतिविधियाँ, कार्यक्रम, पर्यटन एवं भ्रमण सम्बन्धित इवेन्ट आयोजित किये जाते हैं। इस विभाग के अन्तर्गत पढ़ने वाले एम.बी.ए. एवं बी.बी.ए. के विद्यार्थी स्वरोजगार व उद्यमिता के क्षेत्र में कैरियर के नये प्रकल्प गढ़ रहे हैं।

पर्यटन प्रबन्धन विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. अरुणेश पाराशर एवं डॉ. उमाकान्त इन्दौलिया के अनुसार विभाग द्वारा विद्यार्थियों को उत्कृष्ट और तकनीकी रूप से सक्षम बनाने के लिए व्यावहारिक प्रशिक्षण भी प्रदान किया जाता है। इसके लिए विद्यार्थियों को ट्रेवल कम्पनियों, इवेन्ट कम्पनियों व होटल्स आदि में प्रशिक्षण हेतु भेजा जाता है। इस प्रशिक्षण में वे पी.आर., ट्रांसपोर्ट, मैनेजिंग, पैकेज मैनेजिंग, टूर ऑपरेटर, ट्रेवल टूर ऑपरेशन, एजेन्ट,

एच.आर. इन्टरप्योनोरशिप आदि का प्रयोगात्मक ज्ञान प्राप्त करते हैं। पढ़ाई के बाद विद्यार्थी स्वयं की कम्पनी खोलकर या उद्यम शुरू कर अन्य विद्यार्थियों को भी रोजगार प्रदान करते हैं।

परिसर के ऐसे अनेक विद्यार्थी हैं जिन्होंने यहाँ पर्यटन प्रबन्धन में डिग्री प्राप्त करके दो वर्ष के भीतर ही स्वयं की कम्पनियाँ खोल ली हैं और अब वे कैम्पस प्लेसमेंट के इवेन्ट में भाग लेकर विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को रोजगार प्रदान कर रहे हैं। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति के अनुसार स्वयं का उद्यम शुरू करना, वह भी पढ़ाई के तुरन्त बाद; यह विद्यार्थी के आत्मविश्वास तथा मनोयोग के समन्वय को दर्शाता है। यहाँ के विद्यार्थी शिक्षा के साथ विद्या का पाठ सीखते हैं। अत: वे स्वउद्यम एवं अपने रोजगार क्षेत्र में पर्यटकों और समाज- दोनों को नई दिशा प्रदान करेंगे एवं स्वयं भी सफलता की नई-नई ऊँचाईयों को प्राप्त करेंगे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के विद्यार्थी अध्ययन के साथ-साथ समाज एवं राष्ट्र सेवा की भावना को भी निरन्तर विकसित करते-रहते हैं। परिसर में स्थित राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग के अन्तर्गत विभिन्न विषयों के विद्यार्थी दल बनाकर देश के अलग-अलग प्रान्तों में जाते हैं एवं वहाँ सेवा, त्याग, अनुशासन और सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ी रचनात्मक गतिविधियों में भागीदारी करते हैं और अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं उत्तराखण्ड राज्य का नाम रोशन कर रहे हैं।

इस वर्ष भी उत्तराखण्ड से गई टीमों में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की चार छात्राओं ने प्रतिभाग किया। राष्ट्रीय एकता शिविर एवं राष्ट्रीय युवा शिविर के अन्तर्गत इस दल का पहला शिविर गुजरात, बड़ौदरा में महाराज सांभाजी राव विश्वविद्यालय में आयोजित हुआ। इस शिविर में भारत के विभिन्न राज्यों से कुल २१० एन.एस.एस. स्वयंसेवक सम्मिलित हुये थे। इसमें कुल २१ विश्वविद्यालय एवं राज्य शामिल थे।

इस सात दिवसीय शिविर में अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया है। इसी क्रम में उत्तराखण्ड राज्य का नेतृत्त्व करते हुये कु. आशीना सावरकर ने भारत में तृतीय स्थान प्राप्त किया एवं कु. वंशिका ने भी सराहनीय प्रदर्शन किया। आशीना को मुख्य अतिथिओं द्वारा प्रमाण पत्र व ट्राफी से सम्मानित किया गया।

दूसरा शिविर विवेकानन्द जयंती के अवसर पर लखनऊ में आयोजित किया गया, जिसमें प्रेरणा शर्मा एवं ट्विंकल अरोड़ा ने शानदार प्रस्तुति दी। इस आयोजन में सभी युवाओं को माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने सम्बोधित किया एवं उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री योगी आदित्यनाथ ने भी युवाओं को सन्देश दिया। इस कार्यक्रम में देश के अलग-अलग राज्यों के लोकनृत्य, नाटक, गीत-संगीत, काव्य आदि की प्रस्तुतियों द्वारा भारतीय संस्कृति की विविधतापूर्ण एकता की मिसाल प्रस्तुत की गई।

राष्ट्रीय सेवा योजना विभाग के समन्वयक डॉ. उमाकान्त इन्दौलिया के नेतृत्त्व में गये इन स्वयंसेवक विद्यार्थियों ने परिसर लौटने पर विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी से मुलाकात की एवं शांतिकुञ्ज जाकर श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या व श्रद्धेया जीजी से आशीर्वाद प्राप्त किया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने विभाग एवं विद्यार्थियों के प्रयासों और उपलब्धियों की सराहना करते हुये शुभकामनायें दीं। उन्होंने कहा कि यह विश्वविद्यालय देश के सांस्कृतिक पुनरुत्थान के लिए संकल्पित है और यहाँ के विद्यार्थी अपने ऐसे प्रयासों से देश के सांस्कृतिक विकास में अग्रणी भूमिका निभा रहे हैं।

उल्लेखनीय है कि दिल्ली में गणतंत्र दिवस पर आयोजित परेड में इस वर्ष भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय की छात्रा कु. भारती का चयन हुआ था। भारती ने विश्वविद्यालय और उत्तराखण्ड राज्य का गौरव बढ़ाया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय लगातार विगत आठ वर्षों से इस परेड में भागीदारी कर रहा है। कु. भारती द्वारा परेड ट्रेनिंग की लगभग पच्चीस दिन की अवधि में दिल्ली में एकत्रित देश के अन्य राज्य से आये स्वयंसेवकों को नियमित रूप से योग व ध्यान का अभ्यास कराया गया। परिसर लौटने पर छात्रा को श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या, प्रतिकुलपति जी सहित परिसर के आचार्यों ने शुभकामनायें प्रदान कीं।

इसी क्रम में कैवल्य योग शाला, देहरादून के निर्देशन एवं ऋषिकेश योगधाम संस्थान के तत्त्वावधान में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय योगासन प्रतियोगिता में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने शानदार प्रदर्शन करते हुये मेडल एवं अनेक पुस्कार प्राप्त किये। योग विभाग के

आचार्य एवं कोच डॉ.सुनील यादव एवं डॉ. राकेश वर्मा के नेतृत्त्व में गयी टीम ने इस आयोजन में विभिन्न स्थानों से आये २५० प्रतिभागियों के बीच संयम, अनुशासन, स्थिरता और कुशलता का अद्‌भुत परिचय दिया। इस आयोजन के मुख्य अतिथि राज्य के माननीय मुख्यमुंत्री श्री त्रिवेन्द्र सिंह रावत एवं विशिष्ट अतिथि देहरादून के मेयर श्री सुनील उनियाल द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय की छात्रा कु. ज्योति को रजत पदक एवं प्रशस्ति पत्र द्वारा पुरस्कृत किया गया। अन्य विद्यार्थियों ने भी प्रशस्ति पत्र व पुरस्कार प्राप्त किये।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चलाए जा रहे विभिन्न क्रियाकलापों को ध्यान में रखते हुए विगत दिनों उसे भारतीय शिक्षा जगत को सर्वश्रेष्ठ सम्मान प्रदान किया गया। एकेडमिक इनसाइट नामक पत्रिका द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के आधार पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय को सन् २०१९ के भारत के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय की उपाधि प्रदान की गई। पत्रिका के अनुसार, समग्र शिक्षा के क्षेत्र में देव संस्कृति विश्वविद्यालय की पृष्ठभूमि, शिक्षण प्रणाली एवं कार्यशैली- ये सभी संपूर्ण विश्व के लिए प्रेरणास्रोत की तरह से हैं।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय को मिले इस गौरव पर प्रसन्नता जाहिर करते हुए श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी ने कहा कि यह गौरव पूरे उत्तराखण्ड का गौरव है। इस उपलब्धि पर समस्त विश्वविद्यालय गौरवान्वित महसूस करता है। इस अवसर पर कुलपति श्री शरद पारधी जी ने भी हर्ष व्यक्त किया। प्रतिकुलपति ने इस उपलब्धि को पूज्य गुरुदेव व वंदनीया माताजी की असीम अनुकंपा बताते हुए कहा कि इस उपलब्धि के लिए विश्वविद्यालय का समस्त स्टॉफ जिम्मेवार है जिनके अथक परिश्रम और अटूट समर्पण के कारण ही इतना महत्त्वपूर्ण गौरव देव संस्कृति विश्वविद्यालय को प्राप्त हो सका है।

इसी क्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के छात्र श्री गौतम अंगिरा को भारतीय छात्र संसद द्वारा सम्मानित किया गया। इसका आयोजन भारतीय युवा मंत्रालय एवं यूनेस्को के संयुक्त तत्त्वावधान में विज्ञान भवन दिल्ली में किया गया था। कार्यक्रम का शुभारंभ भारत के उपराष्ट्रपति श्री वैंकया नायडू जी द्वारा किया गया था। दो सौ विश्वविद्यालयों से आए प्रतिनिधियों के मध्य श्री अंगिरा को मिले इस सम्मान ने निश्चित रूप से देव संस्कृति विश्वविद्यालय का गौरव और बढ़ाया है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय को मिली उपलब्धियों में एक और महत्त्वपूर्ण उपलब्धि इस तरह जुड़ी कि विगत दिनों विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति को विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा नियुक्त किए गए विशेषज्ञों की सूची में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उनका नाम विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा निर्धारित योग विशेषज्ञों की विशेष सूची में रखा गया है।

मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर अपने जीवन के अन्तिम दिन रंगून की जेल में बिता रहे थे। उन्हें भयंकर दुःखों एवं अभावों से जूझना पड़ रहा था। यह देखकर किसी ने उनसे पूछा- 'आप इतने कष्ट कैसे सह लेते हैं, आपने तो हमेशा शाही महल के सुखों को भोगा है। आप अधिकारियों से इसका विरोध क्यों नहीं करते?' सम्राट ने उत्तर दिया- 'मैंने जो अपराध किया है उसका दण्ड मुझे भोगना चाहिए। यह दण्ड यदि और भी कड़ा होगा तो मैं उसे भी भोगूँगा।'

'क्या अपराध किया है आपने?' उस व्यक्ति ने पूछा। सम्राट ने उत्तर दिया-'देश का पहरेदार होकर भी मैं गहरी नींद सोया रहा, समय रहते मैंने दुश्मन को ललकारा नहीं। इससे भी बड़ा अपराध कोई हो सकता है?' यही बात संस्कृति के पहरेदारों पर भी लागू होती है।

मनुष्य जीवन की गौरव गरिमा न भूलें

जीवात्मा दो तरह की संभावनाओं को अपने भीतर समेटे इस विश्व ब्रह्माण्ड में आती है। एक मार्ग उसे श्रेय का अधिकारी बनाता है तो दूसरा उसे प्रेय से मिलाता है-दोनों में जिसे भी चाहे, वह अपने जीवन पथ के रूप में चुन सकती है। सही समय पर सही पथ का चयन, जीवात्मा को उत्कर्ष के स्वर्णसिंहासन पर आरूढ़ कर सकता है तो वहीं, गलत मार्ग की परिणति पतन-पराभव-पश्चाताप के रूप में देखने को मिलती है।

सही मार्ग का चयन ही जीवात्मा के विवेक की कसौटी है। सत्य व मिथ्या में से किसे चुना गया, भ्रम जंजाल व अनन्त ऐश्वर्य में से किसे जीवन का ध्येय माना गया यह जीवन लक्ष्य की एकमात्र परीक्षा है। जो इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते हैं वे चिरकाल तक परमात्मा के अनुग्रह की छाया में निवास का स्वर्णिम सुयोग प्राप्त करते हैं, आध्यात्मिक उत्थान के साक्षी बनते हैं तो वहीं भ्रम-जंजालों में भटक जाने वाले, अनंत काल तक माया की लहरों से टकरा कर इस सुरदुर्लभ जीवन को व्यर्थ कर देते हैं एवं पछतावे के अतिरिक्त अन्य कुछ के अधिकारी नहीं बनते।

सुख की आकांक्षा मछली को आटे से लगे काँटे के पास ले आती है परंतु उसका परिणाम दु:ख व पीड़ा के अतिरिक्त कुछ और नहीं होता। दाना पाने के लालच में पक्षी बहेलिए के जाल में आ फँसते हैं। चना निकालने के प्रयास में बंदरों का घड़े से बँध जाना विख्यात है। छोटे प्राणियों की कौन कहें? जब स्वयं वनराज सिंह व शत्रुदमन हाथी इस मरीचिका का शिकार हो जाते हैं तो यही भान होता है कि भ्रांति और यथार्थ में महती अंतर है और इस अंतर को अनुभव न कर पाने वाली जीवात्मा, माया के गहरे दलदल में जा फँसती है और फिर वहाँ से निकल पाना उसके लिए असंभव सा प्रतीत होता है।

इन्द्रिय सुख कुछ इसी प्रकार की लिप्सा दिखाकर जीवात्मा को अपने बंधन में आबद्ध करते हैं। जब जीभ के स्वाद, जननेंद्रिय की कामुकता, आँखों के आकर्षण, मन की उद्विग्नता, आकांक्षाओं की व्याकुलता, वासनाओं के विस्तार में ही जीवात्मा उलझ गयी हो तो आत्मिक उत्कर्ष, आंतरिक उत्थान जैसे लक्ष्यों के प्रति दृष्टि कौन दौड़ाए? यदि कभी भूले-बिसरे स्वधर्म की याद जीवात्मा को आ भी जाए तो इस हेतु प्रयत्न-पुरुषार्थ की शक्ति शेष नहीं रहती। न तो इस हेतु समय बचता है और न अपेक्षित मनोयोग का साथ रह जाता है। ऐसे में तो आंतरिक उत्कर्ष भी एक मनोकामना जैसी प्रतीत होती है और इस हेतु सतही प्रयास, जैसे कुछ देर बैठकर पूजा इत्यादि करके मनुष्य अपनी आत्मा को बहला-फुसला कर शांत करने का प्रयास करता है।

यदि सृष्टि में उपस्थित अन्य प्राणियों-योनियों की ओर दृष्टि दौड़ायी जाए तो प्रतीत होता है कि मनुष्य को अन्य प्राणियों की तुलना में कतिपय ज्यादा सुविचार, विभूतियाँ व संपदाऐं दी गयी हैं। सर्वव्यापी, न्यायकारी, नियामक दिव्य सत्ता ने बिना कुछ सोचे, मनुष्य पर ये कृपा कर दी हो ऐसा सोचना ही भूल है। गहराई से इस विषय पर विवेचन करने से पता चलता है कि परमात्मा का मनुष्य को इतनी सारी विभूतियों से, मन, वाणी, आत्मा जैसे दिव्य संपदाओं से सुसज्जित करने के पीछे उद्देश्य यही था कि मनुष्य ईश्वर के काबिल सहायक के रूप में कार्य करे व सृष्टि को चलाने में उसके विश्वासपात्र सहयोगी की भूमिका निबाहे।

यदि विधाता की रची ये सृष्टि-सुंदर, समुन्नत व सुव्यवस्थित हो जाए तो उसका सुफल भी तो मनुष्य ही प्राप्त करेगा। मनुष्य को अन्य प्राणियों से ज्यादा मिले ये अनुदान उसी एक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हैं और यदि जीवात्मा, उस ईश्वरीय प्रयोजन से अपना मुख मोड़ ले तो प्रचुर धन सपंदा होते हुए भी, आत्मप्रताड़ना का दंश उसे कभी सुख-शांति का अनुभव करने नहीं देगा।

सद्दुदेश्य की राह पर चलने के लिए विवेक जागरण की आवश्यकता होती है। जहाँ मौज, आयी वहाँ पहुँच गए और तरंग उठी, वैसे काम करने लग गए ये व्यवहार संतुलित मनोभूमि का परिचायक नहीं है। विवेक जागते ही मनुष्य ऐसे अपरिपक्व व्यवहार से तौबा कर लेता है और जीवन को परमात्मा का बहुमूल्य उपहार मान कर एक सोची-समझी रणनीति के साथ जीवनशैली का पालन

करता है। तब आंतरिक उद्वेग उसे हवा में उड़ते पत्तों की तरह भटका नहीं पाते और वह शांति, संयम, संतुलन की राह पर विजयी घुड़सवार की तरह सीधा चलता चला जाता है।

विवेक के जागरण की पहली कसौटी सही व गलत का निर्धारण करने की क्षमता का आ जाना है। सद्बुद्धि आ जाने पर यह सोच स्वत: आ जाती है कि विषरूपी वासनाओं की तृप्ति जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकती। संसार की सारी वासनाओं को भोग कर भी आज तक कोई तृप्त नहीं हुआ व बड़े से बड़ा महत्त्वाकांक्षी भी काल के प्रहार के आगे नतमस्तक हुआ।

अपनी दस पीढ़ियों की आयु ले लेने वाला ययाति हो या नवग्रहों पर राज करने वाला रावण, विश्वविजेता का स्वप्न देखने वाला सिकंदर हो या क्रूरता का प्रतीक चंगेज खान– ये सभी बहुत कुछ पाकर भी असंतोष की अग्नि में जलते हुए विदा हुए। वहीं २ पैसे कमा लेने वाले कबीर, दादू, रैदास ने आनंद प्राप्ति की अमरकथाऐं लिखीं। कामनाऐं भोगने से तुष्ट हो जातीं तो असंतोष के ज्वार से सभी ग्रसित क्यों दिखायी पड़ते? कामनाऐं मात्र मनुष्य को भटकाती व जलाती हैं, तृप्ति व तुष्टि आंतरिक उत्थान से ही मिल पाते हैं।

लोभांध व मोहांध मनुष्य को ये शाश्वत सत्य कब दिखायी पड़ता है? इसी का परिणाम है कि न पाने योग्य मरणधर्मा संसार के पीछे दौड़ते सभी नजर आते हैं परंतु आत्मा की उन्नति के विषय पर चिंतन करने वाले अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। जीवन भर दौड़ा लेने के बाद जब प्राण का कोष रिक्त हो जाता है और इस धराधाम से चलने का समय आता है तब भान होता है कि जीवन भर मात्र पापों की पोटली एकत्रित की गयी है और मृत्युपर्यंत अंधकार की व्यवस्था बनायी गयी है– श्रेष्ठ व उत्कृष्ट संभावनाऐं तो कब की पीछे छूट गयीं।

जीवन भर भोगों के पीछे दौड़ने पर रोग व शोक के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता, पाप कर्मों के रूप में अगला जन्म बरबाद होता है सो अलग। इसे विवेक की दृष्टि से उपलब्धि कैसे माना जाए? हड्डी चूसने पर कुत्ते को मिलता कुछ नहीं, बस अपने दाढ़ से निकले खून को चूसकर वह इसी प्रपंच में लगा रहता है। वासना व तृष्णा की मृगमरीचिका भी मनुष्य को ऐसे ही व्यर्थ के लक्ष्यों में उलझा कर रखती है। ये सुरदुर्लभ मनुज जीवन यूँ ही गँवा दिया जाता है।

विवेक की कसौटी ही ये है कि खिलौनों के पीछे न भागकर उपयोगी संसाधनों पर जीवन ऊर्जा लगायी जाए। क्षणभंगुर कामनाओं की पूर्ति के स्थान पर आत्म–संतोष, आत्म कल्याण की राह अपनायी जाए। विष खाना या अमृत पीना मनुष्य की चयन क्षमता पर निर्भर करता है परंतु उसे ले लेने के बाद परिणामस्वरूप मिलने वाली मृत्यु अथवा अमरता से बचा नहीं जा सकता। सत्कर्मों का परिणाम सदा शुभ ही होता है और दुष्कर्म, दुर्योग बनकर जन्म–जन्मांतरों तक पीछा करते हैं– ये सृष्टि का शाश्वत सत्य है। बबूल बोकर आम पाने का स्वप्न मुंगेरीलाल ही देख सकते हैं– आत्मज्ञान के पथ के पथिक नहीं। अत: सही समय पर सही पथ पर आने की आवश्यकता है क्योंकि यही जीवन की अंतिम परिणति का निर्धारण करती है।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थात्-नीतिनिपुण लोग निंदा करें या स्तुति करें, लक्ष्मी आए या अपनी इच्छानुसार चली जाए, आज ही मृत्यु हो जाए अथवा युग के अंत में हो- धीर पुरुष उचित मार्ग से अपने पैरों को नहीं हटाते अर्थात् किसी भी स्थिति में विचलित नहीं होते।

संस्कृति रक्षा

महाकाल दे रहा निमंत्रण, आज प्रखर प्रतिभाओं को॥
रो समर्पित गुरुचरणों में, निज अर्जित क्षमताओं को॥

जिनकी धुली कलुषता मन की, पायी शान्ति अपार है॥
संवेदना जगाई मन में, बाँट रहे जो प्यार है॥
निष्ठुरता गल जायेगी फिर मिलेगी गति सद्भावों को॥
करो समर्पित गुरुचरणों में, निज अर्जित क्षमताओं को॥

आना जाना लगा रहेगा, भव का यह संसार है॥
नवयुग की सन्धि बेला का, यह जीवन उपहार है॥
परहित में तिल-तिल जलना ही, जीवन रूपी समिधाओं को॥
करो समर्पित गुरुचरणों में, निज अर्जित क्षमताओं को॥

सादा जीवन उच्च विचारों का, जिनका आधार है॥
लोभ मोह संकीर्ण अहं पर, घोर कठोर प्रहार है॥
तिनके जैसा त्यागा जिनने, आज सभी सुविधाओं को॥
करो समर्पित गुरुचरणों में, निज अर्जित क्षमताओं को॥

भामाशाह, नरेन्द्र शिवा, शंकराचार्य से महापुरुष॥
मानव जाति की सेवा में, खपे अनेकों दिव्य पुरुष॥
निकल पड़ो तन, मन, धन से जग संस्कृति की रक्षाओं को॥
करो समर्पित गुरुचरणों में, निज अर्जित क्षमताओं को॥

-शोभाराम शशांक

'गृहे गृहे गायत्री यज्ञ-उपासना' वर्ष

पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल प्रेक्षागृह, लखनऊ (उत्तरप्रदेश) में कुलाधिपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा आई. ई. टी. के विद्यार्थियों को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद विषय पर उद्बोधन

सिलचर (असम) में सम्पूर्ण भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ 108 कुण्डी गायत्री महायज्ञ

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-07-2019
Regd No. Mathura-025/2018-2020
Licensed to Post without Prepayment
No: Agra/WPP-08/2018-2020

सुभाष पालेकर पद्धति आधारित खेती एवं गौमाता पर आयोजित किसान महासम्मेलन में
कुलाधिपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय की गरिमापूर्ण उपस्थिति

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा
से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक- डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष- 0565-2403940, 2400865, 2402574 मोबा.- 09927086291, 07534812037, 07534812038, 07534812039
फैक्स- 0565 2412273 ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org